उच्च न्यायालय सिविल निर्णय पत्रिका

जुलाई, 2014

निर्णय-सूची

	पृष्ठ संख्या
अवनीश कुमार गर्ग **बनाम** उत्तर प्रदेश राज्य और अन्य	21
कालू राम **बनाम** राजस्थान राज्य और अन्य	82
दयानंद शर्मा **बनाम** राजस्थान राज्य और अन्य	88
धर्मा नन्द **बनाम** हिमाचल प्रदेश वित्त निगम और अन्य	91
न्यू इंडिया एश्योरेंस कंपनी लिमिटेड **बनाम** अखलाक़ अहमद शाह और अन्य	1
मोहम्मद रिहान और अन्य **बनाम** उत्तर प्रदेश राज्य और अन्य	30
राज कुमार शर्मा (डा.) **बनाम** बिहार राज्य और अन्य	35
लक्ष्मी लाल माहेश्वरी **बनाम** राज्य और अन्य	50
श्री रुप सिंह **बनाम** विद्वान् पीठासीन न्यायाधीश, श्रम न्यायालय और एक अन्य	98

संसद् के अधिनियम

हिन्दू विवाह अधिनियम, 1955 का हिन्दी में प्राधिकृत पाठ	(1) – (24)

जुलाई, 2014

उच्च न्यायालय सिविल निर्णय पत्रिका

प्रधान संपादक
अनूप कुमार वार्ष्णेय

संपादक
महमूद अली ख़ां

महत्वपूर्ण निर्णय

मानव अधिकार आयोग अधिनियम, 1994 – धारा 17 और 18 – सरकारी कर्मचारी को पदभार ग्रहण न कराकर परेशान और तंग किया जाना – कर्मचारी द्वारा शिकायत करने पर उसके विरुद्ध दुर्व्यवहार आदि का लांछन – आयोग द्वारा प्राधिकारी के विरुद्ध कार्यवाही करके कर्मचारी को प्रतिकर दिलाया जाना – प्राधिकारी द्वारा आदेश को आक्षेपित करते हुए रिट याचिका फाइल किया जाना – आयोग के विनिश्चय में कोई त्रुटि न होने के कारण हस्तक्षेप करना उचित नहीं है ।

राज कुमार शर्मा (डा.) बनाम **बिहार राज्य और अन्य** 35

संसद् के अधिनियम

हिन्दू विवाह अधिनियम, 1955 का हिन्दी में प्राधिकृत पाठ (1) – (24)

पृष्ठ संख्या 1 – 112 **(2014) 2 सि. नि. प.**

विधि साहित्य प्रकाशन
विधायी विभाग
विधि और न्याय मंत्रालय
भारत सरकार

संपादक-मंडल

श्री प्रेम कुमार मल्होत्रा,
सचिव, विधायी विभाग

श्रीमती शारदा जैन, संयुक्त सचिव एवं विधायी परामर्शी, विधायी विभाग

डा. बी. एन. मणि,
सेवानिवृत्त अपर विधि सलाहकार,
विधि मंत्रालय

प्रो. डा. वैभव गोयल,
सुभारती विश्वविद्यालय, मेरठ
विधि विभाग

डा. सुरेन्द्र कुमार शर्मा, प्रिन्सिपल,
विधि विभाग, डी आई आर डी, गुरु गोविंद सिंह इन्द्रप्रस्थ विश्वविद्यालय

डा. ऋषिपाल सिंह,
सेवानिवृत्त संयुक्त सचिव एवं विधायी परामर्शी, राजभाषा खंड

श्री लालजी प्रसाद,
सेवानिवृत्त प्रधान संपादक, वि.सा.प्र.

श्री कृष्ण गोपाल अग्रवाल,
सेवानिवृत्त संपादक, वि.सा.प्र.

श्री अनूप कुमार वार्ष्णेय,
प्रधान संपादक

श्री महमूद अली खां,
संपादक

श्री जुगल किशोर,
संपादक

डा. मिथिलेश चन्द्र पांडेय,
संपादक

सहायक संपादक : सर्वश्री विनोद कुमार आर्य, कमला कान्त, अविनाश शुक्ल और असलम खान

उप-संपादक : सर्वश्री दयाल चन्द ग्रोवर, महीपाल सिंह और जसवन्त सिंह

कीमत : डाक-व्यय सहित

एक प्रति : ₹ 12

वार्षिक : ₹ 135

© 2014 भारत सरकार, विधि और न्याय मंत्रालय

प्रकाशन और विक्रय प्रबंधक, विधि साहित्य प्रकाशन, विधि और न्याय मंत्रालय (विधायी विभाग), भगवानदास मार्ग, नई दिल्ली-110001 द्वारा प्रकाशित तथा..... द्वारा मुद्रित ।

भारत के समाचारपत्रों के रजिस्ट्रार द्वारा रजिस्ट्रीकृत रजि. सं. 17552/69

सादर

विधि साहित्य प्रकाशन द्वारा तीन मासिक निर्णय पत्रिकाओं – उच्चतम न्यायालय निर्णय पत्रिका, उच्च न्यायालय सिविल निर्णय पत्रिका और उच्च न्यायालय दांडिक निर्णय पत्रिका का प्रकाशन किया जाता है । उच्चतम न्यायालय निर्णय पत्रिका में उच्चतम न्यायालय के चयनित निर्णयों को और उच्च न्यायालय सिविल निर्णय पत्रिका तथा उच्च न्यायालय दांडिक निर्णय पत्रिकाओं में देश के विभिन्न उच्च न्यायालयों के क्रमश: चयनित सिविल और दांडिक निर्णयों को हिन्दी में प्रकाशित किया जाता है । इन पत्रिकाओं को और अधिक आकर्षक बनाने के लिए इनमें जनवरी, 2010 के अंक से महत्वपूर्ण केन्द्रीय अधिनियमों का प्राधिकृत हिन्दी पाठ को पाठकों की सुविधा के लिए श्रृंखलाबद्ध रूप से प्रकाशित किया जा रहा है । तीनों निर्णय पत्रिकाओं की वार्षिक कीमत केवल ₹ 495/- है । उच्चतम न्यायालय निर्णय पत्रिका की वार्षिक कीमत ₹ 225/- है, उच्च न्यायालय सिविल निर्णय पत्रिका की वार्षिक कीमत ₹ 135/- है और उच्च न्यायालय दांडिक निर्णय पत्रिका की वार्षिक कीमत ₹ 135/- है । तीनों मासिक निर्णय पत्रिकाओं के नियमित ग्राहक बनकर हिन्दी के प्रचार-प्रसार के इस महान यज्ञ के भागी बन कर अनुगृहीत करें ।

विधि साहित्य प्रकाशन
(विधायी विभाग)
विधि और न्याय मंत्रालय
भारत सरकार
भारतीय विधि संस्थान भवन,
भगवान दास मार्ग, नई दिल्ली-110001
दूरभाष : 011-23387589, 23385259, 23382105

विधि साहित्य प्रकाशन द्वारा प्रकाशित और विक्रय के लिए उपलब्ध विधि पाठ्य पुस्तकों की सूची

	पुस्तक का नाम	लेखक	पृष्ठ सं.	कीमत (₹)
1.	भारत का विधिक इतिहास	श्री सुरेन्द्र मधुकर	410	30.00
2.	माल विक्रय और परक्राम्य लिखत विधि	डा. एन. पी. परांजपे	371	40.00
3.	वाणिज्य विधि	डा. आर. एल. भट्ट	630	108.00
4.	अपकृत्य विधि के सिद्धान्त (तृतीय संस्करण)	श्री शर्मन लाल अग्रवाल	357	40.00
5.	अंतर्राष्ट्रीय विधि के प्रमुख निर्णय (द्वितीय संस्करण)	डा. एस. सी. खरे	273	115.00
6.	मानव अधिकार	डा. शिवदत्त शर्मा	340	120.00
7.	दण्ड प्रक्रिया संहिता	न्या. महावीर सिंह	840	200.00

पुस्तकों की सूची जिन पर छूट देने की स्वीकृति प्राप्त की गई है ।

	पुस्तक का नाम	लेखक	पृष्ठ सं.	मूल दर (₹)	संशोधित दर (₹)
1.	संविदा विधि (द्वितीय संस्करण)	डा. रामगोपाल चतुर्वेदी	552	275.00	137.00
2.	श्रम विधि (तृतीय संस्करण)	श्री गोपी कृष्ण अरोड़ा	658	452.00	226.00
3.	चिकित्सा न्यायशास्त्र और विष विज्ञान (तृतीय संस्करण)	डा. सी. के. पारिख अनुवादक डा. एन. के. पटौरिया	969	293.00	146.00
4.	आधुनिक पारिवारिक विधि	श्री राम शरण माथुर	767	429.00	214.00
5.	भारतीय स्वातंत्र्य संग्राम (कालजयी निर्णय)	संकलन संपादन – ब्रह्मदेव चौबे	209	225.00	112.00
6.	हिन्दू विधि (द्वितीय संस्करण)	डा. रवीन्द्र नाथ	617	425.00	212.00
7.	भारतीय दंड संहिता	डा. रवीन्द्र नाथ	696	741.00	370.00
8.	भारतीय भागीदारी अधिनियम (द्वितीय संस्करण)	श्री माधव प्रसाद वशिष्ठ	272	165.00	82.00
9.	प्रशासनिक विधि (तृतीय संस्करण)	डा. कैलाश चन्द्र जोशी	635	200.00	100.00
10.	विधिक उपचार (द्वितीय संस्करण)	डा. एस. के. कपूर	414	311.00	155.00
11.	विधि शास्त्र	डा. शिवदत्त शर्मा	501	580.00	377.00

विधि साहित्य प्रकाशन

(विधायी विभाग)

विधि और न्याय मंत्रालय

भारत सरकार

भारतीय विधि संस्थान भवन,

भगवान दास मार्ग, नई दिल्ली-110001

उच्च न्यायालय सिविल निर्णय पत्रिका – जुलाई, 2014 (पृष्ठ संख्या 1 – 112)

विषय-सूची

पृष्ठ संख्या

भारतीय स्टांप अधिनियम, 1899 (1899 का 2)

– धारा 47क – संपत्ति का प्रथम पट्टा – स्टांप शुल्क में छूट के लिए सरकारी आदेश – दूसरे और तीसरे पट्टा धारक द्वारा छूट के लिए दावा – सरकारी आदेशों के अनुसार प्रथम पट्टे पर ही स्टांप शुल्क में छूट अनुज्ञात है – प्राधिकारियों द्वारा पट्टे में यह उल्लेख करना आवश्यक है कि ऐसा पट्टा संपत्ति का प्रथम पट्टा है या नहीं – सरकारी आदेशों के अनुसार दूसरे या पश्चात्वर्ती पट्टों पर छूट नहीं दी जा सकती ।

अवनीश कुमार गर्ग बनाम **उत्तर प्रदेश राज्य और अन्य** 21

मानव अधिकार आयोग अधिनियम, 1994

– धारा 17 और 18 – सरकारी कर्मचारी को पदभार ग्रहण न कराकर परेशान और तंग किया जाना – कर्मचारी द्वारा शिकायत करने पर उसके विरुद्ध दुर्व्यवहार आदि का लांछन – आयोग द्वारा प्राधिकारी के विरुद्ध कार्यवाही करके कर्मचारी को प्रतिकर दिलाया जाना – प्राधिकारी द्वारा आदेश को आक्षेपित करते हुए रिट याचिका फाइल किया जाना – आयोग के विनिश्चय में कोई त्रुटि न होने के कारण हस्तक्षेप करना उचित नहीं है ।

राज कुमार शर्मा (डा.) बनाम **बिहार राज्य और अन्य** 35

– धारा 17 और 18 [सपठित संविधान, 1950 – अनुच्छेद 226] – प्राधिकारी द्वारा हाजिरी रजिस्टर आदि में प्रक्षेपांश करके सरकारी कर्मचारी को तंग किया जाना – मानव अधिकार आयोग में शिकायत – आयोग द्वारा प्रतिकर अधिनिर्णीत करते हुए प्राधिकारी के विरुद्ध

पृष्ठ संख्या

विभागीय कार्यवाही करने का आदेश – आदेश को रिट याचिका फाइल करके उच्च न्यायालय में आक्षेपित किया जाना – जहां विधि द्वारा स्थापित सिद्धांतों और नैसर्गिक न्याय के नियमों का अनुसरण करते हुए प्रशासनिक विनिश्चय किया गया है और व्यक्ति को ऋजु उपचार प्राप्त हुआ है वहां न्यायालय ऐसे प्रशासनिक निर्णय के ऊपर अपना निर्णय प्रतिस्थापित नहीं कर सकता बशर्ते कि प्राधिकारी द्वारा ऐसा निर्णय अपनी अधिकारिता के भीतर किया गया हो ।

राज कुमार शर्मा (डा.) बनाम **बिहार राज्य और अन्य** 35

मानव अधिकार संरक्षण अधिनियम, 1994 (1994 का 10)

– धारा 17 और 18 [सपठित संविधान 1950 – अनुच्छेद 226] – सरकारी कर्मचारी को पदभार ग्रहण करने से रोका जाना – मानव अधिकार आयोग में शिकायत – आयोग के समक्ष लिखित कथन में कतिपय अभिवाक् न किया जाना – उच्च न्यायालय के समक्ष रिट याचिका में कतिपय नए मुद्दे उठाया जाना – रिट याचिका में नए मुद्दों को अनुज्ञात नहीं किया जा सकता ।

राज कुमार शर्मा (डा.) बनाम **बिहार राज्य और अन्य** 35

मोटर यान अधिनियम, 1988 (1988 का 59)

– धारा 163क और 166 – मोटर दुर्घटना – प्रतिकर के लिए दावा – घटना के समय यान के चालक की अनुज्ञप्ति वैध न होना – प्रभाव – जहां घटना के समय यान पालिसी की शर्तों या निबंधनों के भंग में चलाया जा रहा हो वहां भी बीमा कंपनी प्रतिकर का संदाय करने के लिए जिम्मेदार होगी तथापि, बीमा कंपनी

पृष्ठ संख्या

संदाय की गई धनराशि बीमाकृत व्यक्ति से वसूल करने की हक़दार होगी ।

न्यू इंडिया एश्योरेंस कंपनी लिमिटेड बनाम **अखलाक़ अहमद शाह और अन्य** 1

राजस्थान सिविल सेवा (वर्गीकरण, नियंत्रण और अपील) नियम, 1958

– नियम 14(3) और 14(2) – कर्मचारी द्वारा 3,97,636/- रुपए का गबन – जांच के दौरान वसूली का आदेश – चुनौती – पश्चात्वर्ती संबंधित आदेश को रिट याचिका में आक्षेपित न किया जाना – अनुशासनिक प्राधिकारी द्वारा पारित आदेश के विरुद्ध अपील ग्राह्य होना – रिट याचिका – ऐसे किसी आदेश में जो नियमों के अधीन अपीलीय हो, उच्च न्यायालय रिट याचिका में हस्तक्षेप नहीं कर सकता – तथापि, कर्मचारी समुचित न्यायालय या प्राधिकारी के समक्ष अपील फाइल कर सकता है ।

दयानंद शर्मा बनाम **राजस्थान राज्य और अन्य** 88

संविधान, 1950

– अनुच्छेद 14 – उत्तर प्रदेश राज्य सड़क परिवहन निगम में प्राइवेट बसों का लगाया जाना – पुरानी स्कीम के अधीन निगम और बस आपरेटरों के बीच करार – नई स्कीम आने पर पुरानी स्कीम रद्द करके नई स्कीम के अधीन नया करार – निगम द्वारा पुरानी दर से फीस का उद्ग्रहण – रिट याचिका द्वारा चुनौती – एक ही समय में चलाई जा रही बसों के बीच फीस उद्गृहीत करने के मामले में विभेद नहीं किया जा सकता – ऐसा करना अनुच्छेद 14 का अतिक्रमणकारी होगा ।

मोहम्मद रिहान और अन्य बनाम **उत्तर प्रदेश राज्य और अन्य** 30

पृष्ठ संख्या

– अनुच्छेद 226 – सरकारी कर्मचारी द्वारा कदाचार करने और अनियमितताएं बरतने के आधार पर अनिवार्य सेवानिवृत्ति – कर्मचारी के विरुद्ध विभागीय कार्यवाही के साथ दंड न्यायालय में कार्यवाही – दंड न्यायालय में कर्मचारी की सम्मानपूर्वक दोषमुक्ति – विभागीय कार्यवाहियों में और अपील प्राधिकारी द्वारा दंड न्यायालय का दोषमुक्ति का आदेश विचार में न लिया जाना – विभागीय जांच और दंड न्यायालय के समक्ष कार्यवाहियां एक साथ चल सकती हैं – अपील प्राधिकारी द्वारा विवेक का प्रयोग न किए जाने के आधार पर अनिवार्य सेवानिवृत्ति का आदेश अभिखंडित किए जाने योग्य है ।

लक्ष्मी लाल माहेश्वरी बनाम **राज्य और अन्य** 50

– अनुच्छेद 226 – ठेकेदार द्वारा कार्य पूरा न करने के कारण सरकार को वित्तीय हानि – अधीक्षण इंजीनियर के विरुद्ध कार्यवाही – दंड – पेंशन प्राप्त करने के समय पूर्व दंड पर्याप्त न होने के आधार पर दंड में वृद्धि करते हुए वेतनवृद्धि में कमी – रिट याचिका – ऐसा दंड नैसर्गिक न्याय के सिद्धांत के अनुसार नहीं कहा जा सकता – आदेश अपास्त किए जाने योग्य है ।

कालू राम बनाम **राजस्थान राज्य और अन्य** 82

– अनुच्छेद 226 – रिट – कर्मकार द्वारा बिना पूर्व अनुमति के 3 दिन की छुट्टी पर जाना – वापस लौटकर पूर्ववत् पदग्रहण करने की इच्छा जाहिर करना – प्रबंधतंत्र द्वारा उसे पद ग्रहण नहीं करने देना – बिना अनुमति छुट्टी पर जाने को आधार बनाकर कर्मकार को सेवा से हटा देना – आदेश अभिखंडित किए जाने योग्य होना – यदि कोई कर्मकार बिना अनुमति के छुट्टी पर चला जाता है तो ऐसी छुट्टी, अप्राधिकृत अनुपस्थिति की

पृष्ठ संख्या

कोटि में आएगी न कि जानबूझकर अनुपस्थित रहने की तथा शास्ति के तौर पर इस आधार पर कर्मकार को सेवा से हटाना, उस पर अधिरोपित आरोप के अननुपात में होने के कारण अवैध, मनमाना और अयुक्तियुक्त होगा ।

श्री रुप सिंह बनाम **विद्वान् पीठासीन न्यायाधीश, श्रम न्यायालय और एक अन्य** 98

– अनुच्छेद 226 – रिट याचिका – सरकारी सेवक की वार्षिक गोपनीय रिपोर्टों से औसत मानक से कम अंक प्राप्त होना – कर्मचारी को ऐसी गोपनीय रिपोर्टें संसूचित न किया जाना – विभागीय प्रोन्नति समिति द्वारा प्रोन्नति करने से इनकार करना – जहां विभागीय प्रोन्नति समिति द्वारा किसी सरकारी सेवक की प्रोन्नति करने से इस आधार पर इनकार किया जाता है कि ऐसे सरकारी सेवक की कुछ गोपनीय रिपोर्टों में औसत मानक से कम अंक प्राप्त हुए हैं वहां ऐसी रिपोर्टें सरकारी सेवक को संसूचित न किए जाने की स्थिति में रिपोर्टें संसूचित करके संपूर्ण सेवा की रिपोर्टों पर विचार किए जाने का आदेश किया जा सकता है ।

धर्मा नन्द बनाम **हिमाचल प्रदेश वित्त निगम और अन्य** 91

न्यू इंडिया एश्योरेंस कंपनी लिमिटेड

बनाम

अखलाक़ अहमद शाह और अन्य

तारीख 6 मार्च, 2013

न्यायमूर्ति सत्यपूत महरोत्रा और न्यायमूर्ति वाई. सी. गुप्ता

मोटर यान अधिनियम, 1988 (1988 का 59) – धारा 163-क और 166 – मोटर दुर्घटना – प्रतिकर के लिए दावा – घटना के समय यान के चालक की अनुज्ञप्ति वैध न होना – प्रभाव – जहां घटना के समय यान पालिसी की शर्तों या निबंधनों के भंग में चलाया जा रहा हो वहां भी बीमा कंपनी प्रतिकर का संदाय करने के लिए जिम्मेदार होगी तथापि, बीमा कंपनी संदाय की गई धनराशि बीमाकृत व्यक्ति से वसूल करने की हक़दार होगी ।

वर्तमान अपील प्रत्यर्थी सं. 1 से 4 द्वारा फाइल 2009 के मोटर दुर्घटना दावा मामला सं. 369 में मोटर दुर्घटना दावा अधिकरण, मुरादाबाद द्वारा तारीख 9 मई, 2001 को पारित निर्णय और आदेश (पंचाट) के विरुद्ध मोटर यान अधिनियम, 1988 की धारा 173 के अधीन फाइल की गई है अपील खारिज करते हुए,

अभिनिर्धारित – मोटर यान अधिनियम, 1988 की धारा 147 के अधीन बीमा पालिसी जारी करने वाला कोई बीमाकर्ता उस व्यक्ति की या उन वर्गों के व्यक्तियों की जो पालिसी में विनिर्दिष्ट हैं, किसी ऐसे दायित्व की बाबत क्षतिपूर्ति करने के लिए जिम्मेदार होगा जिसकी उस व्यक्ति या उन वर्गों के व्यक्तियों के मामले में पूर्ति के लिए वह पालिसी तात्पर्यित है । यदि पालिसी द्वारा बीमाकृत किसी व्यक्ति के विरुद्ध कोई निर्णय या अधिनिर्णय प्राप्त कर लिया गया है तो बीमाकर्ता उसके अधीन देय बीमाकृत रकम से अनधिक कोई रकम का उस व्यक्ति को जो डिक्री का फायदा पाने का हकदार है, इस प्रकार संदाय करेगा मानो वे खर्चों और

ब्याज की रकम के साथ दायित्व के संबंध में निर्णीत-ऋणी हो । ऐसा तब भी होगा जब बीमाकर्ता पालिसी से इनकार करने या रद्द करने का हकदार हो अथवा इनकार या रद्द कर सकता हो । यह स्पष्ट है कि अधिकरण द्वारा दिए गए निदेश जिसके द्वारा अपीलार्थी-बीमा कंपनी से प्रथमतः आक्षेपित निर्णय के अधीन अधिनिर्णीत धनराशि जमा करने और उसके पश्चात् प्रश्नगत यान के स्वामी से उसे विधिमान्य और विधिक रूप से वसूल करने की अपेक्षा की गई है, सही और विधिमान्य हैं । अपीलार्थी-बीमा कंपनी द्वारा उपरोक्त विनिश्चयों में अनुध्यात निदेशों की निष्पादन न्यायालय के समक्ष उस समय ईप्सा की जा सकती है जब अपीलार्थी-बीमा कंपनी आक्षेपित अधिनिर्णय के अधीन अधिनिर्णीत धनराशि को जमा करने के पश्चात् बीमाकृत व्यक्ति अर्थात् प्रश्नगत यान के स्वामी (हमारे समक्ष के प्रत्यर्थी सं. 5) से उक्त धनराशि वसूल करने के लिए निष्पादन न्यायालय के समक्ष समुचित आवेदन करे और जब दावाकर्ता अधिनिर्णय के निष्पादन के लिए या अपीलार्थी-बीमा कंपनी द्वारा जमा की गई धनराशि को निर्मुक्त करने के लिए आवेदन फाइल करे । हम इस संबंध में कोई राय व्यक्त नहीं कर रहे हैं । (पैरा 19, 21, 31 और 35)

निर्दिष्ट निर्णय

		पैरा
[2009]	2009 (1) ए. डब्ल्यू. सी. 355 : **नेशनल इंश्योरेंस कंपनी लिमिटेड** बनाम **श्रीमती खुरशीदा बानो और अन्य;**	38
[2008]	2008 (1) टी. ए. सी. 803 (एस. सी.) : **प्रेम कुमारी और अन्य** बनाम **प्रहलाद देव और अन्य;**	23,30
[2007]	(2007) 3 एस. सी. सी. 700 = 2007 (2) टी. ए. सी. 398 (एस. सी.) : **नेशनल इंश्योरेंस कंपनी लिमिटेड** बनाम **लक्ष्मी नारायण दत्त;**	23,28,30
[2007]	2007 (1) टी. ए. सी. 20 (इलाहाबाद) : **श्रीमती भूरी और अन्य** बनाम **श्रीमती शोभा रानी और अन्य;**	37

[2005] 2005 (1) टी. ए. सी. 4 (एस. सी.) = (2004) 8 एस. सी. सी. 517 : **नेशनल इंश्योरेंस कंपनी लिमिटेड** बनाम **श्रीमती छल्ला भरथम्मा;** 15,34

[2004] [2004] 3 उम. नि. प. 24 = ए. आई. आर. 2004 एस. सी. 1531 = (2004) 3 एस. सी. सी. 297 = 2004 (1) टी. ए. सी. 321 : **नेशनल इंश्योरेंस कम्पनी लिमिटेड** बनाम **स्वर्ण सिंह और अन्य;** 23,26, 28,29,30

[2004] 2004 (2) टी. ए. सी. 12 (एस. सी.) : **ओरियन्टल इंश्योरेंस कंपनी लिमिटेड** बनाम **श्री नन्जप्पन और अन्य;** 15,33

[1998] ए. आई. आर. 1998 एस. सी. 588 : **ओरियन्टल इंश्योरेंस कंपनी लि.** बनाम **इंदरजीत कौर और अन्य** । 23,24

अपीली (सिविल) अधिकारिता : 2011 की प्रथम अपील सं. 2832.

मोटर यान अधिनियम, 1988 की धारा 173 के अधीन अपील ।

अपीलार्थी की ओर से श्री राजीव चड्ढा

प्रत्यर्थियों की ओर से –

अपील में निर्णय न्यायमूर्ति सत्यपूत महरोत्रा और न्यायमूर्ति वाई. सी. गुप्ता ने दिया ।

निर्णय

वर्तमान अपील तारीख 10 अक्तूबर, 2009 को प्रातः लगभग 8.20 बजे हुई एक दुर्घटना में मोहम्मद इस्लाम की मृत्यु होने के कारण दावेदार-प्रत्यर्थी सं. 1 से 4 द्वारा फाइल किए गए 2009 के मोटर दुर्घटना दावा मामला सं. 369 में मोटर दुर्घटना दावा अधिकरण, मुरादाबाद द्वारा तारीख 9 मई, 2011 को पारित निर्णय और आदेश/पंचाट के विरुद्ध मोटर यान अधिनियम, 1988 की धारा 173 के अधीन फाइल की गई है ।

2. दावा याचिका में यह कथन किया गया है कि उक्त मोहम्मद

इस्लाम दावेदार-प्रत्यर्थी सं. 1 का पुत्र, दावेदार-प्रत्यर्थी सं. 3 का पति और दावेदार-प्रत्यर्थी सं. 4 का पिता था; और तारीख 10 अक्तूबर, 2009 को प्रातः लगभग 8.20 बजे उक्त मोहम्मद इस्लाम हीरो होंडा मोटरसाइकिल जिसकी रजिस्ट्रेशन सं. यू.पी. 23 सी-2055 है, से संभल हसनपुर से कस्बा सईद नागली जाने वाली सड़क पर ढक्का की ओर जा रहा था; और जब उक्त मोहम्मद इस्लाम कृष्णा पब्लिक स्कूल के सामने पहुंचा तो एक ट्रक जिसकी रजिस्ट्रेशन सं. एच.आर. 38 एच-4216 है (जिसे इसमें इसके पश्चात् "प्रश्नगत यान" कहा गया है) ने विपरीत दिशा से आते हुए और उसके चालक द्वारा उतावलेपन और उपेक्षापूर्वक चलाते हुए, गलत दिशा से आकर उक्त मोहम्मद इस्लाम की मोटरसाइकिल को टक्कर मारी, जिसके परिणामस्वरूप उक्त मोहम्मद इस्लाम जमीन पर गिर गया और उसे गंभीर क्षतियां पहुंचीं और मोटरसाइकिल को हानि पहुंची और घायल मोहम्मद इस्लाम को तुरन्त अस्पताल ले जाया गया जहां उसकी मृत्यु हो गई ।

3. प्रत्यर्थी सं. 5 (भगवान शर्मा) प्रश्नगत यान (अर्थात् ट्रक) का स्वामी था जबकि अपीलार्थी-बीमा कंपनी से प्रश्नगत यान बीमाकृत था ।

4. पक्षकारों के बीच अभिवचनों के आदान-प्रदान करने के पश्चात्, अधिकरण ने उक्त दावा मामले में विवाद्यक विरचित किए ।

5. उक्त दावा मामले में साक्ष्य पेश किया गया था ।

6. अधिकरण ने अभिलेख पर पेश की गई सामग्री पर विचार करते हुए, विभिन्न विवाद्यकों पर अपने निष्कर्ष अभिलिखित किए ।

7. अधिकरण ने अन्य बातों के साथ-साथ यह अभिनिर्धारित किया कि प्रश्नगत दुर्घटना प्रश्नगत यान के चालक अर्थात् संजय कुमार द्वारा यान उतावलेपन और उपेक्षापूर्वक चलाने के कारण हुई थी जिसके कारण उक्त मोहम्मद इस्लाम को गंभीर क्षतियां पहुंचीं और परिणामस्वरूप उसकी मृत्यु हो गई । अधिकरण ने यह भी अभिनिर्धारित किया कि उक्त मृतक मोहम्मद इस्लाम की ओर से कोई उपेक्षा सिद्ध नहीं हुई है ।

8. अधिकरण ने यह भी अभिनिर्धारित किया कि प्रश्नगत यान अपीलार्थी-बीमा कंपनी से विधिवत रूप से बीमाकृत था ।

9. अधिकरण ने यह भी अभिनिर्धारित किया कि प्रश्नगत यान के चालक के पास प्रश्नगत दुर्घटना की तारीख को विधिमान्य और प्रभावी चालन अनुज्ञप्ति नहीं थी ।

10. अधिकरण ने यह भी अभिनिर्धारित किया कि दुर्घटना के समय मृतक मोहम्मद इस्लाम की आयु 23 वर्ष थी । अधिकरण ने यह भी अभिनिर्धारित किया कि मृतक की वार्षिक आय 26,400/- रुपए थी ।

11. उपर्युक्त निष्कर्षों को ध्यान में रखते हुए, अधिकरण ने तारीख 9 मई, 2011 को आक्षेपित निर्णय और आदेश/पंचाट पारित किया और अन्य बातों के साथ-साथ दावा याचिका के फाइल करने की तारीख से अंतिम संदाय की तारीख तक 6 प्रतिशत वार्षिक ब्याज की दर से ब्याज सहित 3,08,700/- रुपए की धनराशि का प्रतिकर दावेदार-प्रत्यर्थी सं. 1 से 4 के हक में अधिनिर्णीत किया ।

12. तथापि, अधिकरण द्वारा अभिलिखित किए गए उपर्युक्त निष्कर्षों को ध्यान में रखते हुए कि प्रश्नगत यान के चालक के पास दुर्घटना की तारीख को विधिमान्य और प्रभावी चालन अनुज्ञप्ति नहीं थी, अधिकरण ने यह निदेश दिया कि प्रतिकर की धनराशि अपीलार्थी-बीमा कंपनी को संदत्त करनी होगी और इसके पश्चात्, अपीलार्थी-बीमा कंपनी को प्रश्नगत यान के स्वामी (प्रत्यर्थी सं. 5) से उसे वसूल करने का अधिकार होगा ।

13. हमने अपीलार्थी-बीमा कंपनी की ओर से विद्वान् काउंसेल श्री राजीव चड्ढा को सुना और अभिलेख का परिशीलन किया ।

14. अपीलार्थी-बीमा कंपनी की ओर से विद्वान् काउंसेल श्री राजीव चड्ढा ने यह दलील दी कि अधिकरण ने यह अभिनिर्धारित करते हुए कि पूर्वोक्त प्रश्नगत यान बीमा पालिसी के निबंधनों और शर्तों के विरुद्ध चलाया जा रहा था, प्रतिकर की धनराशि का संदाय करने के लिए अपीलार्थी-बीमा कंपनी को निदेश देने में और उसके पश्चात् प्रश्नगत यान के स्वामी अर्थात् प्रत्यर्थी सं. 5 से उसे वसूल करने का आदेश करने में गलती की है ।

15. श्री राजीव चड्ढा ने यह दलील दी कि किसी भी दशा में अपीलार्थी-बीमा कंपनी का हित प्रश्नगत यान के स्वामी (जो प्रत्यर्थी सं. 5 है) के विरुद्ध उचित रूप से सुरक्षित किया जाना चाहिए था ताकि आक्षेपित अधिनिर्णय के अधीन प्रतिकर का संदाय करने के पश्चात् अपीलार्थी-बीमा कंपनी उपर्युक्त प्रश्नगत यान के स्वामी से उसे वसूल करने के लिए समर्थ हो सके । श्री राजीव चड्ढा ने इस संबंध में निम्नलिखित विनिश्चयों का अवलंब लिया है :–

1. **ओरियन्टल इंश्योरेंस कंपनी लि.** बनाम **श्री नन्जप्पन और अन्य**[1];

2. **नेशनल इंश्योरेंस कंपनी लिमिटेड** बनाम **श्रीमती छल्ला भरथम्मा**[2];

16. हमने अपीलार्थी-बीमा कंपनी की ओर से विद्वान् काउंसेल श्री राजीव चड्ढा द्वारा दी गई दलीलों पर विचार किया ।

17. जहां तक श्री राजीव चड्ढा द्वारा दी गई इस दलील का संबंध है कि अधिकरण ने प्रतिकर का संदाय करने के लिए और उसके पश्चात् प्रश्नगत यान के स्वामी से उसे वसूल करने के लिए बीमा कंपनी को निदेश करने में गलती की है, इस संबंध में मोटर यान अधिनियम, 1988 के सुसंगत उपबंधों का उल्लेख करना उपयुक्त होगा ।

18. मोटर यान अधिनियम, 1988 की धारा 147 की उप-धारा (5) इस प्रकार है :–

> "**147. पालिसियों की अपेक्षाएं तथा दायित्व की सीमाएं** – (1) से (4) .....
>
> (5) तत्समय प्रवृत्त किसी विधि में किसी बात के होते हुए भी, कोई बीमाकर्ता जो इस धारा के अधीन बीमा पालिसी देता है, उस व्यक्ति की या उन वर्गों के व्यक्तियों की जो पालिसी में विनिर्दिष्ट हैं, किसी ऐसे दायित्व की बाबत क्षतिपूर्ति करने के लिए जिम्मेदार होगा जिसकी उस व्यक्ति या उन वर्गों के व्यक्तियों के मामले में पूर्ति के लिए वह पालिसी तात्पर्यित है ।"

19. इस प्रकार, उपर्युक्त उपबंध यह उपबंधित करता है कि मोटर यान अधिनियम, 1988 की धारा 147 के अधीन बीमा पालिसी जारी करने वाला कोई बीमाकर्ता उस व्यक्ति की या उन वर्गों के व्यक्तियों की जो पालिसी में विनिर्दिष्ट हैं, किसी ऐसे दायित्व की बाबत क्षतिपूर्ति करने के लिए जिम्मेदार होगा जिसकी उस व्यक्ति या उन वर्गों के व्यक्तियों के मामले में पूर्ति के लिए वह पालिसी तात्पर्यित है ।

20. मोटर यान अधिनियम, 1988 की धारा 149 में जहां तक यह सुसंगत है, निम्नलिखित उपबंधित है :–

> "149. **पर-व्यक्ति जोखिमों की बाबत बीमाकृत व्यक्तियों के**

---

[1] 2004 (2) टी. ए. सी. 12 (एस.सी.)

[2] 2005 (1) टी. ए. सी. 4 (एस. सी.) = (2004) 8 एस. सी. सी. 517.

विरुद्ध हुए निर्णयों और अधिनिर्णयों की तुष्टि करने का बीमाकर्ताओं का कर्तव्य – (1) यदि किसी व्यक्ति के पक्ष में, जिसने पालिसी कराई है, धारा 147 की उपधारा (3) के अधीन बीमा-प्रमाणपत्र दे दिए जाने के पश्चात्, धारा 147 की उपधारा (1) के खंड (ख) के अधीन पालिसी द्वारा पूरा करने के लिए अपेक्षित दायित्व के संबंध में (जो दायित्व पालिसी के निबंधनों के अंतर्गत है) {या धारा 163-क के उपबंधों के अधीन है} ऐसे किसी व्यक्ति के विरुद्ध निर्णय और अधिनिर्णय अभिप्राप्त कर लिया जाता है जिसका पालिसी द्वारा बीमा किया हुआ है तो इस बात के होते हुए भी कि बीमाकर्ता पालिसी को शून्य करने या रद्द करने का हकदार है अथवा उसने पालिसी शून्य या रद्द कर दी है, बीमाकर्ता इस धारा के उपबंधों के अधीन रहते हुए डिक्री का फायदा उठाने के हकदार व्यक्ति को, उस दायित्व के संबंध में उसके अधीन देय राशि, जो बीमाकृत राशि से अधिक न होगी, खर्चों की बाबत देय किसी रकम तथा निर्णयों पर ब्याज संबंधी किसी अधिनियमिति के आधार पर उस राशि पर ब्याज की बाबत देय किसी धनराशि सहित इस प्रकार देगा मानो वह निर्णीत-ऋणी हो ।

(2) से (7).....।"

21. उपर्युक्त उद्धृत उपबंध से यह दर्शित होता है कि यदि पालिसी द्वारा बीमाकृत किसी व्यक्ति के विरुद्ध कोई निर्णय या अधिनिर्णय प्राप्त कर लिया गया है तो बीमाकर्ता उसके अधीन देय बीमाकृत रकम से अनधिक कोई रकम का उस व्यक्ति को जो डिक्री का फायदा पाने का हकदार है, इस प्रकार संदाय करेगा मानो वे खर्चों और ब्याज की रकम के साथ दायित्व के संबंध में निर्णीत-ऋणी हो । ऐसा तब भी होगा जब बीमाकर्ता पालिसी से इनकार करने या रद्द करने का हकदार हो अथवा इनकार या रद्द कर सकता हो ।

22. उपर्युक्त उपबंधों को ध्यान में रखते हुए हमारा यह मत है कि अधिकरण द्वारा दिए गए इस निदेश जिसके द्वारा आक्षेपित अधिनिर्णय के अधीन प्रतिकर जमा करने के लिए बीमा कंपनी/अपीलार्थी से अपेक्षा की गई है, और उसके पश्चात् उपरोक्त प्रश्नगत यान के स्वामी से विधि के अनुसार उसे वसूल करने का निदेश दिया गया है, कोई त्रुटि नहीं है ।

23. उपरोक्त निष्कर्ष माननीय उच्चतम न्यायालय के विभिन्न

विनिश्चयों द्वारा समर्थित है :–

1. **ओरियंटल इंश्योरेंस कंपनी लि.** बनाम **इंदरजीत कौर और अन्य**[1];

2. **नेशनल इंश्योरेंस कंपनी लिमिटेड** बनाम **स्वर्ण सिंह और अन्य**[2];

3. **नेशनल इंश्योरेंस कंपनी लिमिटेड** बनाम **लक्ष्मी नारायण दत्त**[3];

4. **प्रेम कुमारी और अन्य** बनाम **प्रहलाद देव और अन्य**[4] ।

24. माननीय उच्चतम न्यायालय ने **ओरियंटल इंश्योरेंस कंपनी लि.** बनाम **इंदरजीत कौर और अन्य**[1] वाले मामले में इस प्रकार मत व्यक्त किया है :–

> "7. अतः, हमारे समक्ष यही स्थिति है । बीमा अधिनियम, 1938 की धारा 64-फख द्वारा सृजित वर्जन के बावजूद अपीलार्थी, प्राधिकृत बीमाकर्ता ने बस के लिए प्रीमियम प्राप्त किए बिना बीमा पालिसी जारी कर दी थी । मोटर यान अधिनियम, 1988 की धारा 147 (5) और धारा 149(1) के उपबंधों के आधार पर अपीलार्थी उस दायित्व के संबंध में तृतीय पक्षकार की जिसके लिए पालिसी ली गई थी, क्षतिपूर्ति के लिए और इसकी हकदारी होते हुए भी उसके संबंध में प्रतिकर के अधिनिर्णयों का समाधान करने के लिए दायी है, (जिस पर हम कोई राय व्यक्त नहीं कर रहे हैं) भले ही वह इस कारण से पालिसी से इनकार करे या रद्द कराए कि प्रीमियम के संदाय में जारी चैक का आदरण नहीं हुआ था ।"
>
> (रेखांकन बल देने के लिए किया गया है)

25. इस प्रकार, यह विनिश्चय, मोटर यान अधिनियम, 1988 की धारा 147(5) और 149(1) के आधार पर उपर्युक्त उल्लिखित निष्कर्ष का समर्थन करता है ।

26. **नेशनल इंश्योरेंस कंपनी लिमिटेड** बनाम **स्वर्ण सिंह और अन्य**[2] वाले मामले में माननीय उच्चतम न्यायालय ने इस प्रकार अभिनिर्धारित किया है :–

---

[1] ए. आई. आर. 1998 एस. सी. 588.

[2] [2004] 3 उम. नि. प. 24 = ए. आई. आर. 2004 एस. सी. 1531 = (2004) 3 एस. सी. सी. 297 = 2004 (1) टी. ए. सी. 321.

[3] (2007) 3 एस. सी. सी. 700 = 2007 (2) टी. ए. सी. 398 (एस. सी.).

[4] 2008 (1) टी. ए. सी. 803 (एस. सी.).

"105. इन याचिकाओं में उठे विभिन्न विवाद्यकों से संबंधित हमारे निष्कर्षों का सारांश इस प्रकार है –

(i) मोटर यान अधिनियम, 1988 का अध्याय 11 जिसमें पर-व्यक्तियों के जोखिमों के विरुद्ध यानों के अनिवार्य बीमा के लिए उपबंध है, मोटर यानों के प्रयोग के द्वारा कारित दुर्घटनाओं के शिकार व्यक्तियों को प्रतिकर द्वारा अनुतोष प्रदान करने के लिए एक समाज कल्याणकारी विधान है । सभी यानों का अनिवार्य बीमा सुरक्षा उपबंध इस सर्वोपरि उद्देश्य की दृष्टि से है और अधिनियम के उपबंधों का निर्वचन उक्त उद्देश्य को प्रभावी बनाने के लिए किया जाना चाहिए ।

(ii) बीमाकर्ता मोटर यान अधिनियम, 1988 की धारा 163-क या धारा 166 के अधीन फाइल दावा याचिका में, अन्य बातों के साथ-साथ, उक्त अधिनियम की धारा 149(2)(क)(ii) के निबंधनों के अनुसार प्रतिरक्षा प्रस्तुत करने का हकदार है ।

(iii) बीमाकर्ता द्वारा दायित्व से बचने के लिए पालिसी की शर्त का भंग अर्थात् अधिनियम की धारा 149 की उपधारा 2(क)(ii) में यथाअंतर्विष्ट चालक अयोग्यता या चालक द्वारा अविधिमान्य चालन अनुज्ञप्ति को बीमाकृत व्यक्ति द्वारा किया गया साबित होना चाहिए । मात्र चालन अनुज्ञप्ति का न होना, उसका जाली या अविधिमान्य होना या सुसंगत समयबिंदु पर यान चालन के लिए चालक की अयोग्यता स्वयमेव ही बीमाकृत व्यक्ति या पर-व्यक्ति के विरुद्ध बीमाकर्ता को उपलब्ध प्रतिरक्षाएं नहीं हैं । बीमाकृत व्यक्ति के विरुद्ध अपने दायित्व से बचने के लिए बीमाकर्ता को यह साबित करना चाहिए कि बीमाकृत व्यक्ति उपेक्षा का दोषी था और वह सम्यक् रूप से अनुज्ञप्ति प्राप्त चालक या ऐसे व्यक्ति द्वारा जो सुसंगत समय पर यान के चालन के लिए अयोग्य नहीं था, यानों के प्रयोग के संबंध में पालिसी की शर्तों को पूरा करने के मामले में युक्तियुक्त सावधानी बरतने में विफल रहा ।

(iv) तथापि, बीमा कंपनियों को अपने दायित्व को टालने के लिए न केवल उक्त कार्यवाहियों में उपलब्ध प्रतिरक्षा(ओं) को सिद्ध करना चाहिए अपितु यान के स्वामी की ओर से 'भंग' को

भी सिद्ध करना चाहिए; जिसके सबूत का भार उन पर होगा ।

(v) न्यायालय इस प्रकार का कोई मानदंड अधिकथित नहीं कर सकता है कि उक्त भार का किस प्रकार निर्वहन किया जाएगा क्योंकि यह प्रत्येक मामले के तथ्यों और परिस्थितियों पर निर्भर करेगा ।

(vi) यहां तक कि जहां बीमाकर्ता चालक द्वारा विधिमान्य अनुज्ञप्ति धारण करने या सुसंगत अवधि के दौरान यान चालन की अपनी अर्हता से संबंधित पालिसी की शर्त से संबंधित बीमाकृत व्यक्ति के भंग को साबित कर देता है तो उसे (बीमाकर्ता को) उस समय तक बीमाकृत व्यक्ति के प्रति अपने दायित्व को टालने के लिए अनुज्ञात नहीं किया जाएगा जब तक कि चालन अनुज्ञप्ति की शर्तों के उक्त भंग इतने मौलिक न हों कि वे दुर्घटना से संबंधित पाए जाएं । पालिसी की शर्तों का निर्वचन करते समय अधिकरण अधिनियम की धारा 149(3) के अधीन बीमाकृत व्यक्ति को उपलब्ध प्रतिरक्षाओं को अनुज्ञात करने से संबंधित मूल भंग की संकल्पना और मुख्य प्रयोजन के नियम को लागू करेगा ।

(vii) यह प्रश्न कि क्या स्वामी ने यह पता लगाने के लिए युक्तियुक्त सावधानी बरती है कि क्या चालक द्वारा प्रस्तुत चालन अनुज्ञप्ति (जाली अनुज्ञप्ति या अन्यथा) विधि की अपेक्षा को पूरा करती है या नहीं, प्रत्येक मामले के तथ्यों के आधार पर अवधारित किया जाएगा ।

(viii) यदि दुर्घटना के समय यान ऐसे व्यक्ति द्वारा चलाया जा रहा था जिसके पास शिक्षार्थी अनुज्ञप्ति थी तो बीमा कंपनियां डिक्री की तुष्टि करने की दायी होगी ।

(ix) धारा 168 के साथ पठित धारा 165 के अधीन गठित दावा अधिकरण मोटर यान के प्रयोग के कारण होने वाली दुर्घटनाओं, जिनमें पर-व्यक्ति की मृत्यु या शारीरिक क्षति या उसकी संपत्ति को नुकसान अंतर्वलित होता है, के संबंध में सभी दावों का न्यायनिर्णयन करने के लिए सक्षम है । अधिकरण की उक्त शक्ति एक ओर दावाकर्ता या दावाकर्ताओं और दूसरी ओर बीमाकृत व्यक्ति, बीमाकर्ता और चालक के मध्य के आंतरिक

दावों का विनिश्चय करने तक निर्बंधित नहीं है । प्रतिकर के दावे का न्यायनिर्णयन और बीमाकर्ता को उपलब्ध प्रतिरक्षा या प्रतिरक्षाओं की उपलब्धता का विनिश्चय करने के दौरान अधिकरण को बीमाकर्ता और बीमाकृत व्यक्ति के मध्य के परस्पर विवादों का विनिश्चय करने के लिए आवश्यक रूप से शक्ति और अधिकारिता प्राप्त है । दावाकर्ता द्वारा प्रतिकर के दावे के न्यायनिर्णयन और इस पर किए गए अधिनिर्णय के दौरान बीमाकर्ता और बीमाकृत व्यक्ति के मध्य के परस्पर दावों और विवादों पर दिया गया विनिश्चय दावाकर्ताओं के पक्ष में अधिनिर्णय के प्रवर्तन और निष्पादन के लिए अधिनियम की धारा 174 में यथाउपबंधित रीति में प्रवर्तनीय और निष्पादनीय है ।

(x) जहां अधिनियम के अधीन दावे का न्यायनिर्णयन करने पर अधिकरण का यह निष्कर्ष हो कि बीमाकर्ता ने उपधारा (7) के साथ पठित धारा 149(2) के उपबंधों के अनुसार अपनी प्रतिरक्षा को संतोषप्रद रूप से साबित कर दिया है, जैसाकि इस न्यायालय द्वारा ऊपर निर्वचन किया गया है, वहां अधिकरण यह निदेश दे सकता है कि बीमाकर्ता प्रतिकर के और उन धनराशियों के संबंध में जिनका संदाय करने के लिए उस अधिकरण के अधिनिर्णय के अधीन पर-व्यक्ति को संदाय करने के लिए बाध्य किया गया है, बीमाकृत व्यक्ति को प्रतिपूर्ति करे । अधिकरण द्वारा दावे का इस प्रकार अवधारण प्रवर्तनीय होगा और बीमाकृत व्यक्ति से बीमाकर्ता को देय ठहराई गई धनराशि राजस्व के रूप में अधिनियम की धारा 174 के अधीन दी गई रीति में अधिकरण द्वारा कलक्टर को जारी प्रमाणपत्र पर वसूल की जाएगी । प्रमाणपत्र भू-राजस्व के बकाया के रूप में वसूली के लिए केवल तभी जारी किया जाएगा जैसा कि अधिनियम की धारा 168 की उपधारा (3) द्वारा यथाअपेक्षित है, जब बीमाकृत व्यक्ति अधिकरण द्वारा अधिनिर्णय की घोषणा की तारीख से बीस दिनों के भीतर बीमाकर्ता के पक्ष में अधिनिर्णीत धनराशि जमा करने में असफल रहता है ।

(xi) उपधारा (4) के परंतुक के साथ इसके उपबंधों और उपधारा (5) जिनमें बीमाकृत व्यक्ति की ओर से बीमा की संविदा के अधीन संदत्त धनराशि वसूल करने के लिए

बीमाकर्ता को समर्थ बनाने के लिए इसमें उल्लिखित विनिर्दिष्ट आकस्मिकता आशयित है, का आश्रय अधिकरण द्वारा लिया जा सकता है और इन्हें ऐसे मामलों में जहां दिए गए तथ्यों और परिस्थितियों में दुर्घटना के शिकार व्यक्तियों के पारस्परिक दावों के न्यायनिर्णयन में विलंब होगा, बीमाकृत व्यक्ति के विरुद्ध बीमाकर्ता की प्रतिरक्षाओं और दावों को नियमित न्यायालय में उपचार माना जा सकता है ।"

(रेखांकन बल देने के लिए किया गया है)

27. प्रतिपादना संख्या (vi) और (x) से जिनको ऊपर उद्धृत किया गया है, इस निष्कर्ष को समर्थन मिलता है कि वर्तमान मामले में आक्षेपित अधिनिर्णय में अधिकरण द्वारा दिया गया निदेश विधि अनुसार है ।

28. **नेशनल इंश्योरेंस कंपनी लिमिटेड** बनाम **लक्ष्मी नारायण दत्त**[1] वाले मामले में उच्चतम न्यायालय के न्यायाधीशों ने **नेशनल इंश्योरेंस कंपनी लिमिटेड** बनाम **स्वर्ण सिंह और अन्य**[2] वाले मामले में दिए गए विनिश्चय पर विचार करते हुए इस प्रकार मत व्यक्त किया :–

"35. जैसा कि ऊपर उल्लेख किया गया है कि पर-व्यक्ति के अधिकार और निजी नुकसान के मामलों के बीच वैचारिक संकल्पनात्मक मतभेदों को ध्यान में रखा जाना चाहिए । आरंभिक रूप से, यह साबित करने का भार बीमाकर्ता पर होता है कि अनुज्ञप्ति जाली थी । यदि एक बार यह साबित हो जाता है तो नैसर्गिक परिणाम उत्पन्न होंगे ।

उपरोक्त विश्लेषण को ध्यान में रखते हुए निम्नलिखित स्थितियां उत्पन्न होती हैं –

(1) स्वर्ण सिंह (पूर्वोक्त) वाले मामले में दिया गया विनिश्चय पर-व्यक्ति जोखिम वाले मामलों के अतिरिक्त अन्य मामलों में लागू नहीं होता ।

---

[1] (2007) 3 एस. सी. सी. 700 = 2007 (2) टी. ए. सी. 398 (एस. सी.).

[2] [2004] 3 उम. नि. प. 24 = ए. आई. आर. 2004 एस. सी. 1531 = (2004) 3 एस. सी. सी. 297 = 2004 (1) टी. ए. सी. 321.

(2) जहां अनुज्ञप्ति मूल रूप से जाली थी वहां नवीकरण अन्तर्निहित दोष को दूर नहीं कर सकता है ।

(3) पर-व्यक्ति जोखिम के मामले में बीमाकर्ता को रकम की क्षतिपूर्ति करनी होती है और जहां ऐसा हो, वहां बीमाकृत से उसे वसूल भी किया जा सकता है ।

(4) सप्रयोजन निर्वचन की संकल्पना अधिनियम की धारा 149 से संबंधित मामलों को लागू नहीं होती ।

उच्च न्यायालय/आयोग, विधि की स्थिति के प्रकाश में जैसा कि ऊपर उल्लेख किया गया है, मामले पर नए सिरे से विचार करेगा ।

अपीलें खर्चों के बारे में कोई आदेश पारित किए बिना उपर्युक्त रूप में स्वीकार की जाती हैं ।"

(रेखांकन बल देने के लिए किया गया है)

29. उपर्युक्त विनिश्चय को ध्यान में रखते हुए यह स्पष्ट है कि **नेशनल इंश्योरेंस कंपनी लिमिटेड** बनाम **स्वर्ण सिंह और अन्य**[1] वाले मामले में दिया गया विनिश्चय तृतीय पक्षकार के जोखिम के मामले में लागू होता है और बीमाकर्ता को तृतीय पक्षकार को रकम की क्षतिपूर्ति करनी होती है और इसके पश्चात् बीमाकृत से इस रकम को वसूल किया जा सकता है ।

30. **प्रेम कुमारी और अन्य** बनाम **प्रहलाद देव और अन्य**[2] वाले मामले में माननीय उच्चतम न्यायालय के न्यायाधीशों ने **नेशनल इंश्योरेंस कंपनी लिमिटेड** बनाम **लक्ष्मी नारायण दत्त**[3] वाले मामले में दिए गए विनिश्चय को स्पष्ट करते हुए **नेशनल इंश्योरेंस कंपनी लिमिटेड** बनाम **स्वर्ण सिंह और अन्य**[1] वाले मामले में दिए गए विनिश्चय की पुष्टि करते हुए इस प्रकार अभिनिर्धारित किया है :–

"8. स्वर्ण सिंह (पूर्वोक्त) वाले मामले में अधिकथित सिद्धांतों के प्रभाव और विवक्षा (तात्पर्य) और नेशनल इंश्योरेंस कंपनी लिमिटेड **बनाम** लक्ष्मी नारायण दत्त (पूर्वोक्त) वाले मामले में हममें से एक

---

[1] [2004] 3 उम. नि. प. 24 = ए. आई. आर. 2004 एस. सी. 1531 = (2004) 3 एस. सी. सी. 297 = 2004 (1) टी. ए. सी. 321.

[2] 2008 (1) टी. ए. सी. 803 (एस. सी.).

[3] (2007) 3 एस. सी. सी. 700 = 2007 (2) टी. ए. सी. 398 (एस. सी.).

(न्यायमूर्ति डा. अरिजीत पसायत) ने विचार करते हुए स्पष्ट किया है । पैरा 38 में निकाला गया निम्नलिखित निष्कर्ष सुसंगत हैं –

> "38. उपरोक्त विश्लेषण को दृष्टिगत करते हुए निम्नलिखित स्थितियां उत्पन्न होती हैं –
>
> (1) स्वर्ण सिंह (पूर्वोक्त) वाले मामले में दिए गए विनिश्चय का तृतीय पक्ष जोखिम वाले मामलों को छोड़कर अन्य किसी मामले में कोई उपयोग नहीं है ।
>
> (2) जहां अनुज्ञप्ति मूल रूप से जाली है, वहां नवीकरण से अन्तर्निहित दोष दूर नहीं हो सकता ।
>
> (3) तृतीय पक्ष जोखिम वाले मामलों में बीमाकर्ता को रकम की क्षतिपूर्ति करनी होती है और यदि ऐसा उपदर्शित किया गया है तो वह बीमाकृत से उसकी वसूली कर सकता है ।
>
> (4) सप्रयोजन निर्वचन की संकल्पना का अधिनियम की धारा 149 से संबंधित मामलों में कोई उपयोग नहीं होता ।

9. ओरियंटल इंश्योरेंस कंपनी लिमिटेड **बनाम** मीना वारीयान और अन्य [(2007) 5 एस. सी. सी. 428 = 2007 (2) टी. ए. सी. 417] वाले मामले में दिया गया पश्चात्वर्ती विनिश्चय, जो दो न्यायाधीशों की न्यायपीठ द्वारा दिया गया विनिश्चय है, स्वर्ण सिंह (पूर्वोक्त) वाले मामले में अधिकथित सिद्धांतों पर विचार करते हुए निष्कर्ष निकाला गया है कि ऐसे किसी मामले में जहां कोई व्यक्ति अधिनियम के अर्थांतर्गत तृतीय पक्ष नहीं है, बीमा कंपनी को केवल स्वर्ण सिंह (पूर्वोक्त) वाले मामले का अवलंब लेकर अपने आप दायी नहीं बनाया जा सकता । ऐसा निष्कर्ष निकालते हुए न्यायालय ने लक्ष्मी नारायण दत्त (पूर्वोक्त) वाले मामले के पैरा 38 में उल्लिखित विश्लेषण को उद्धृत किया और उसके साथ सहमति व्यक्त की । हम संगतता को दृष्टि में रखते हुए स्वर्ण सिंह (पूर्वोक्त) वाले मामले के निर्वचन और प्रयोजनीयता को ध्यान में रखते हुए लक्ष्मी नारायण दत्त (पूर्वोक्त) वाले मामले में प्रतिपादित सिद्धांत को दोहराते हैं ।"

(रेखांकन बल देने के लिए किया गया है)

31. उपरोक्त विनिश्चयों को ध्यान में रखते हुए, यह स्पष्ट है कि

अधिकरण द्वारा दिए गए निदेश जिसके द्वारा अपीलार्थी-बीमा कंपनी से प्रथमतः आक्षेपित निर्णय के अधीन अधिनिर्णीत धनराशि जमा करने और उसके पश्चात् प्रश्नगत यान के स्वामी से उसे विधिमान्य और विधिक रूप से वसूल करने की अपेक्षा की गई है, सही और विधिमान्य हैं ।

32. जहां तक श्री राजीव चड्ढा द्वारा दी गई इस दलील का संबंध है कि अपीलार्थी-बीमा कंपनी का हित प्रश्नगत यान के स्वामी (जो प्रत्यर्थी सं. 5 है) के विरुद्ध संरक्षित होना चाहिए जिससे कि यदि अपीलार्थी-बीमा कंपनी प्रतिकर की धनराशि नकद रूप में जमा करे तो वह उपरोक्त प्रश्नगत यान के स्वामी से उसे वसूल करने के लिए समर्थ हो सके, इस संबंध में श्री राजीव चड्ढा द्वारा अवलंब लिए गए विनिश्चयों का निर्देश करना प्रासंगिक है ।

33. **ओरियंटल इंश्योरेंस कंपनी लि.** बनाम **श्री नन्जप्पन और अन्य**[1] वाले मामले में माननीय उच्चतम न्यायालय ने निम्नलिखित मत व्यक्त किया है :–

> "7. अतः हम उच्च न्यायालय के निर्णय को अपास्त करते हुए बलजीत कौर 2004 (1) टी. ए. सी. 366 (एस. सी.) वाले मामले में अभिव्यक्त मत के निबंधनों में यह निदेश करते हैं कि बीमाकर्ता अधिकरण द्वारा नियत किए गए उस प्रतिकर के परिमाण का आज से तीन मास के भीतर संदाय करेगा जिसके संबंध में प्रत्यर्थी-दावाकर्ताओं ने कोई विवाद नहीं किया है । बीमाकर्ता से उसे वसूल करने के प्रयोजन के लिए बीमाकर्ता को वाद फाइल करने की आवश्यकता नहीं होगी । वह निष्पादन न्यायालय के समक्ष इस प्रकार कार्यवाही आरंभ कर सकता है मानो अधिकरण के समक्ष निर्धारण की विषय-वस्तु से संबंधित विवाद बीमाकर्ता और स्वामी के बीच था और विवाद्यक स्वामी के विरुद्ध और बीमाकर्ता के पक्ष में विनिश्चित किया गया है । बीमाकृत को धनराशि के जारी करने से पहले यान के स्वामी को नोटिस जारी किया जाएगा और उस संपूर्ण धनराशि के लिए प्रतिभूति दाखिल करने की अपेक्षा की जाएगी जिसका बीमाकर्ता दावाकर्ताओं को संदाय करेंगे । दुर्घटना से संबंधित यान प्रतिभूति के भाग के रूप में कुर्क किया जाएगा । यदि निष्पादन न्यायालय आवश्यक समझे तो वह संबंधित क्षेत्रीय परिवहन प्राधिकरण की

---

[1] 2004 (2) टी. ए. सी. 12 (एस. सी.).

सहायता ले सकता है । निष्पादन न्यायालय उस रीति के बारे में विधि के अनुसार समुचित आदेश पारित करेगा जिसमें बीमाकृत यान का स्वामी बीमाकर्ता को संदाय करेगा । यदि इस मामले में कोई चूक होती है तो निष्पादन न्यायालय के लिए यह विकल्प खुला होगा कि वह प्रतिभूतियों के निपटान द्वारा या बीमाकृत यान के स्वामी की किसी अन्य संपत्ति या संपत्तियों से वसूलने का निदेश करे । अपील का उपर्युक्त निबंधनों में निपटान किया जाता है और खर्चे के बारे में कोई आदेश नहीं किया जाता है ।"

(रेखांकन बल देने के लिए किया गया है)

34. **नेशनल इंश्योरेंस कंपनी लिमिटेड** बनाम **श्रीमती छल्ला भरथम्मा**[1] वाले मामले में इस प्रकार अधिकथित किया गया है :–

"प्रश्न यह रहता है कि समुचित निदेश क्या होगा । अधिनियम के फायदा संबंधी उद्देश्य पर विचार करते हुए बीमाकर्ता के लिए यह उचित होगा कि वह अधिनिर्णय का समाधान करे भले ही विधि में उसका कोई उत्तरदायित्व न हो । कुछ मामलों में बीमाकर्ता को बीमाकृत से धनराशि वसूल करने के लिए विकल्प और स्वतंत्रता दी गई है । स्वामी से संदेय धनराशि वसूल करने के प्रयोजन के लिए बीमाकर्ता से वाद फाइल करने की अपेक्षा नहीं की गई है । वह संबंधित निष्पादन न्यायालय के समक्ष इस प्रकार कार्यवाही आरंभ कर सकता है मानो अधिकरण के समक्ष निर्धारण करने के लिए संबंधित विवाद्यक की विषय-वस्तु विवाद्यक बीमाकर्ता और स्वामी के बीच हो और विवाद्यक स्वामी के विरुद्ध और बीमाकर्ता के पक्ष में विनिश्चित किया गया हो । दावाकर्ताओं के लिए धनराशि को निर्मुक्त करने से पूर्व दुर्घटना से संबंधित यान का स्वामी उस संपूर्ण धनराशि के लिए प्रतिभूति देगा जो बीमाकर्ता दावेदारों को देगा । दुर्घटना से संबंधित यान प्रतिभूति के भाग के रूप में कुर्क किया जाएगा । यदि आवश्यकता हुई तो निष्पादन न्यायालय संबंधित क्षेत्रीय परिवहन प्राधिकरण की सहायता लेगा । निष्पादन न्यायालय विधि के अनुसार उस रीति के बारे में समुचित आदेश पारित करेगा जिसमें यान का स्वामी बीमाकर्ता को संदाय करेगा । यदि इस संबंध में कोई चूक होती है तो निष्पादन न्यायालय यान के स्वामी अर्थात् बीमाकृत की प्रतिभूतियों के निपटान द्वारा या किसी अन्य सम्पत्ति या सम्पत्तियों से

[1] (2004) 8 एस. सी. सी. 517 = 2005 (1) टी. ए. सी. 2 (एस. सी.).

वसूली करने के लिए निदेश देगा । वर्तमान मामले में हम अन्तर्वलित धनराशि की मात्रा पर विचार करते हुए इस विनिश्चय को बीमाकर्ता के विवेक पर छोड़ते हैं कि बीमाकृत से धनराशि वसूल करने के लिए क्या कदम उठाया जाए ।"

35. हमारी राय में, अपीलार्थी-बीमा कंपनी द्वारा उपरोक्त विनिश्चयों में अनुध्यात निदेशों की निष्पादन न्यायालय के समक्ष उस समय ईप्सा की जा सकती है जब अपीलार्थी-बीमा कंपनी आक्षेपित अधिनिर्णय के अधीन अधिनिर्णीत धनराशि को जमा करने के पश्चात् बीमाकृत व्यक्ति अर्थात् प्रश्नगत यान के स्वामी (हमारे समक्ष के प्रत्यर्थी सं. 5) से उक्त धनराशि वसूल करने के लिए निष्पादन न्यायालय के समक्ष समुचित आवेदन करे और जब दावाकर्ता अधिनिर्णय के निष्पादन के लिए या अपीलार्थी-बीमा कंपनी द्वारा जमा की गई धनराशि को निर्मुक्त करने के लिए आवेदन फाइल करे । हम इस संबंध में कोई राय व्यक्त नहीं कर रहे हैं ।

36. तथापि, हम इस न्यायालय के उन दोनों विनिश्चयों को निर्दिष्ट कर सकते हैं जिनमें उच्चतम न्यायालय के उपरोक्त विनिश्चयों पर विचार किया गया है ।

37. **श्रीमती भूरी और अन्य** बनाम **श्रीमती शोभा रानी और अन्य**[1] वाले मामले में इस न्यायालय के एक विद्वान् एकल न्यायाधीश ने इस प्रकार अभिनिर्धारित किया है :–

"5. पक्षकारों के विद्वान् काउंसेल द्वारा यथानिर्दिष्ट उपरोक्त निर्णयज विधि से यह स्पष्ट होता है कि इस तथ्य के बावजूद कि बीमाकर्ता को मोटर यान अधिनियम, 1988 की धारा 149 के अधीन पालिसी के अन्तर्गत दावाकर्ताओं को प्रतिकर के लिए उत्तरदायी नहीं ठहराया गया है फिर भी इस संदर्भ में उच्चतम न्यायालय द्वारा यथा विकसित विधि के अधीन संदाय करने का दायित्व बीमा कंपनी को ठहराया गया है । इसके साथ-साथ बीमा कंपनी को भी मोटर यान अधिनियम, 1988 के उपबंधों के भीतर बीमाकृत व्यक्ति से उक्त धनराशि वसूल करने के लिए और इस प्रयोजन के लिए कोई वाद फाइल करने का भार डाले बिना स्वतंत्रता दी गई है । आरंभतः विधि का यह सिद्धांत बलजीत कौर वाले मामले में घोषित किया गया था और इसका संबंधित पक्षकारों द्वारा ऊपर निर्दिष्ट मामले में अनुसरण किया गया है । किन्तु पश्चात्वर्ती मामलों में विशेषतया नन्जप्पन

[1] 2007 (1) टी. ए. सी. 20 (इलाहाबाद).

(पूर्वोक्त) वाले मामले में यह मत व्यक्त किया गया है कि बीमाकृत/यान का स्वामी न्यायालय के समक्ष जमा धनराशि को निर्मुक्त करने से पहले एक सूचना जारी करेगा और उससे उस संपूर्ण धनराशि के लिए प्रतिभूति देने की अपेक्षा की जाएगी जो बीमा कंपनी दावाकर्ताओं को संदाय करेगी । नोटिस के पश्चात् न्यायालय प्रतिभूति के भाग के रूप में दुर्घटना करने वाले यान की कुर्की करने का निदेश कर सकता है और विधि के अनुसार समुचित आदेश पारित कर सकता है । चूक होने की दशा में न्यायालय के लिए यह विकल्प होगा कि वह प्रतिभूति के निपटान द्वारा बीमाकृत/स्वामी से या यान के स्वामी की किसी अन्य सम्पत्ति या सम्पत्तियों से धनराशि को सीधे वसूल करने का निदेश कर सकेगा । तथापि, ये सभी तरीके उच्चतम न्यायालय द्वारा बीमाकर्ता द्वारा बीमाकृत से वसूली के लिए उपबंधित किए गए हैं । तथापि, उच्चतम न्यायालय द्वारा दिए गए इन सभी निदेशों से तात्पर्य यह है कि न्यायालय उन दावाकर्ताओं के हित को कम नहीं मानेगा जिनके कल्याण के लिए उच्चतम न्यायालय ने मोटर यान अधिनियम, 1988 की धारा 149 के साथ बीमाकर्ता के दायित्व के अन्यथा निर्वचन द्वारा इन सभी मामलों के माध्यम से इस विधि का विकास किया है । इस प्रकार, वर्तमान मामले में निष्कर्ष यह है कि पुनरीक्षणकर्ता-दावेदार को तब भी नुकसान न हो जब बीमाकृत/यान का स्वामी प्रतिभूति नहीं देता है या वह न्यायालय के समक्ष उसको जारी किए नोटिस के अनुसरण में हाजिर नहीं होता है । अधिनियम के उपबंधों के भीतर धनराशि वसूल करने का भार उच्चतम न्यायालय के उपरोक्त निर्णय में स्वयं बीमाकर्ता पर डाला गया है । दावाकर्ताओं को जिन्होंने अपने पक्ष में अधिनिर्णय प्राप्त किया है, इन मामलों में उच्चतम न्यायालय ने अपने संप्रेक्षण के माध्यम से हानि नहीं होने दी है । इस प्रकार, मामले को उपरोक्त दृष्टि से देखते हुए मेरा यह मत है कि यदि निचला न्यायालय प्रथमतः बीमाकृत/यान के स्वामी को नोटिस जारी करने का निदेश देता है और यदि उसके पश्चात् न्यायालय के समक्ष जमा राशि दावाकर्ताओं के पक्ष में निर्मुक्त की जाती है तो यह न्यायोचित और ठीक होगा ।"

38. **नेशनल इंश्योरेंस कंपनी लिमिटेड** बनाम **श्रीमती खुरशीदा बानो और अन्य**[1] वाले मामले में इस न्यायालय की एक खंडपीठ ने इस प्रकार

[1] 2009(1) ए. डब्ल्यू. सी. 355.

अधिकथित किया है :–

"4. विद्वान् काउंसेल ने यह सिद्ध करने के लिए नेशनल इंश्योरेंस कंपनी लिमिटेड **बनाम** श्रीमती छल्ला भरथम्मा [(2004) 8 एस. सी. सी. 517 = 2005 (1) टी. ए. सी. 2 (एस. सी.)] वाले मामले में उच्चतम न्यायालय द्वारा दिए गए निर्णय का उल्लेख किया है कि बीमा कंपनी के दावे को स्वामी द्वारा प्रत्याभूत किया जाना चाहिए । हमारे समक्ष इस प्रतिपादना के संबंध में कोई विवाद नहीं है । हम यह कहना चाहते हैं कि जब तक वसूली के प्रयोजन के लिए बीमा कंपनी द्वारा उसी कार्यवाही में कोई समुचित आवेदन नहीं दिया जाता है तब तक स्वामी द्वारा प्रतिभूति प्रदान करने का प्रश्न ही नहीं उठता है । ऐसी प्रास्थिति अब परिपक्व हो चुकी है । इस प्रक्रम पर हम केवल दावाकर्ताओं के लिए प्रतिकर का संदाय करने से संबंधित मुद्दे पर विचार कर रहे हैं जिनसे इनकार नहीं किया जा सकता है और जिसका स्वामी तथा बीमा कंपनी के बीच दायित्व के संबंध में विवाद से कोई संबंध नहीं है । पीड़ित एक पर-व्यक्ति है । इसके अलावा, ऐसे निर्णय में, उच्चतम न्यायालय की खंड न्यायपीठ ने अधिनियम के फायदाग्रही उद्देश्य पर विचार करते हुए स्पष्ट रूप से यह अभिनिर्धारित किया है, 'बीमाकर्ता के लिए यह उचित होगा, कि वह अधिनिर्णय का समाधान करे भले ही विधि में उसका कोई दायित्व न हो' प्रभावतः यह अधिनिर्णय के समाधान के लिए एक कामचलाऊ (अन्तरकालीन) प्रबंध है जैसे ही इसे पारित किया जाता है । नेशनल इंश्योरेंस कंपनी लि. **बनाम** स्वर्ण सिंह और अन्य {[2004] 3 उम. नि. प. 24 = ए. आई. आर. 2004 एस. सी. 1531 = (2004) 3 एस. सी. सी. 297 = 2004 (1) टी. ए. सी. 321} वाले मामले में उच्चतम न्यायालय के तीन न्यायाधीशों की न्यायपीठ ने अपने निर्णय के पैरा 110 में इस प्रकार मत व्यक्त किया कि अधिकरण यह निदेश कर सकता है कि बीमाकर्ता प्रतिकर और अन्य धनराशियों के लिए बीमाकृत को प्रतिपूर्ति करने के लिए दायी है जिसके द्वारा उसे अधिकरण के अधिनिर्णय के अधीन पर-व्यक्ति को संदाय करने के लिए बाध्य किया गया है । अतः विधान-मंडल का आशय और उच्चतम न्यायालय तथा विभिन्न उच्च न्यायालयों द्वारा किए गए निर्वचन के आधार पर यह बात सुस्थापित है कि दावाकर्ताओं के लिए प्रतिकर के संदाय से किसी भी परिस्थिति में इनकार नहीं किया जाएगा । हम दोहराते हुए यह भी कह सकते हैं

कि इसका स्वामी या बीमाकर्ता के दायित्व के संबंध में विवाद से कोई संबंध नहीं है जिस पर उसी मामले में पृथक् आवेदन में या बीमा कंपनी द्वारा प्रस्तुत निष्पादन आवेदन में विचार किया जा सकता है ।"

39. उपर्युक्त को ध्यान में रखते हुए, हमारा यह मत है कि अधिकरण ने बीमा कंपनी-अपीलार्थी को प्रतिकर की धनराशि जमा करने और बीमाकृत व्यक्ति अर्थात् प्रश्नगत यान के स्वामी प्रत्यर्थी सं. 5 से उसे वसूल करने का निदेश देने में कोई अवैधता कारित नहीं की है ।

40. आक्षेपित अधिनिर्णय के अधीन धनराशि जमा करने के पश्चात् अपीलार्थी-बीमा कंपनी के लिए यह विकल्प खुला है कि वह उपरोक्त प्रश्नगत यान के स्वामी (प्रत्यर्थी सं. 5) से उसे वसूल करने के लिए समुचित कार्यवाहियां आरंभ करे और ऐसी कार्यवाहियों में समुचित निदेश प्राप्त करे ।

41. यह स्पष्ट किया जाता है कि यदि दावेदार-प्रत्यर्थी सं. 1 से 4 या उपरोक्त प्रश्नगत यान के स्वामी (प्रत्यर्थी सं. 5) द्वारा कोई अपील फाइल की जाती है तो बीमा कंपनी-अपीलार्थी के लिए यह विकल्प खुला रहेगा कि वह विधिक आधारों पर उसका विरोध करे ।

42. अपीलार्थी-बीमा कंपनी द्वारा वर्तमान अपील फाइल करते समय जमा की गई 25,000/- रुपए की धनराशि आक्षेपित निर्णय में दिए गए निदेशों के अनुसार अपीलार्थी-बीमा कंपनी द्वारा जमा की जाने वाली धनराशि में समायोजित करने के लिए अधिकरण को लौटाई जाएगी ।

43. तद्नुसार बीमा कंपनी द्वारा फाइल की गई अपील उपर्युक्त मताभिव्यक्तियों के अध्यधीन खारिज की जाती है ।

44. तथापि, मामले के तथ्यों और परिस्थितियों में खर्चों के लिए कोई आदेश पारित नहीं किया जाता है ।

अपील खारिज की गई ।

मही./मह.

अवनीश कुमार गर्ग

बनाम

उत्तर प्रदेश राज्य और अन्य

तारीख़ 30 अगस्त, 2013

न्यायमूर्ति अरुण टंडन

भारतीय स्टांप अधिनियम, 1899 (1899 का 2) – धारा 47क – संपत्ति का प्रथम पट्टा – स्टांप शुल्क में छूट के लिए सरकारी आदेश – दूसरे और तीसरे पट्टा धारक द्वारा छूट के लिए दावा – सरकारी आदेशों के अनुसार प्रथम पट्टे पर ही स्टांप शुल्क में छूट अनुज्ञात है – प्राधिकारियों द्वारा पट्टे में यह उल्लेख करना आवश्यक है कि ऐसा पट्टा संपत्ति का प्रथम पट्टा है या नहीं – सरकारी आदेशों के अनुसार दूसरे या पश्चात्वर्ती पट्टों पर छूट नहीं दी जा सकती ।

यह रिट याचिका सहायक आयुक्त (स्टांप), गाजियाबाद द्वारा तारीख 5 जनवरी, 2011 को पारित आदेश तथा 2012-13 की अपील सं. 61 में आयुक्त मेरठ खंड, मेरठ द्वारा तारीख 1 फरवरी, 2013 को पारित आदेश को अभिखंडित करने के लिए फाइल की गई है । रिट याचिका खारिज करते हुए,

अभिनिर्धारित – प्रथमतः उन तथ्यों का उल्लेख करना उचित होगा जो कि याचिका के अभिलेख पर मौजूद हैं और जो विवादित नहीं हैं । औद्योगिक क्षेत्र, कवि नगर, सेक्टर-17, गाजियाबाद, उत्तर प्रदेश राज्य स्थित भूखंड सं. 180 का पट्टा, उत्तर प्रदेश राज्य औद्योगिक विकास निगम द्वारा प्रथम बार तारीख 20 मई, 1971 को 90 वर्ष की अवधि के लिए प्रेम चंद पुत्र राय बहादुर नामक व्यक्ति के हक में किया गया था और यह उत्तर प्रदेश राज्य विकास निगम द्वारा प्रश्नगत संपत्ति के बारे में किया गया प्रथम पट्टा था । उत्तर प्रदेश राज्य औद्योगिक विकास निगम द्वारा इसी भूखंड का दूसरा पट्टा तारीख 4 जनवरी, 1990 को मैसर्स गाजियाबाद फुटवियर प्राइवेट लिमिटेड के हक में 71 वर्ष की अवधि के लिए अर्थात् ऊपर निर्दिष्ट शेष अवधि के लिए निष्पादित किया गया था । उत्तर प्रदेश राज्य औद्योगिक विकास निगम द्वारा इस संपत्ति का तीसरा पट्टा 52 वर्ष की शेष अवधि के

लिए तारीख 24 अक्तूबर, 2008 को याची अवनीश कुमार गर्ग के हक में किया गया था । पट्टा विलेख की प्रति वर्तमान रिट याचिका में उपाबंध सं. 1 के रूप में उपाबद्ध की गई है । पट्टा विलेख के प्रथम और द्वितीय पृष्ठ पर रबड़ की मुद्रा लगी हुई है जिसमें पट्टे की अवधि 52 वर्ष के रूप में उल्लिखित है । तथापि, पट्टे के पृष्ठ सं. 27 के खंड 1 में यह उल्लिखित है कि पट्टा तारीख 30 अगस्त, 2008 से 90 वर्ष की अवधि के लिए किया गया है । सरकारी आदेश के परिशीलन मात्र से यह पूर्ण रूप से स्पष्ट होता है कि यह विभिन्न निगमों या उत्तर प्रदेश राज्य औद्योगिक विकास निगम, गाजियाबाद सहित राज्य के प्राधिकारियों द्वारा निष्पादित पट्टे के संबंध में उपदर्शित सीमा तक स्टांप शुल्क की वसूली से विलेखों को छूट प्रदान करता है, तथापि, शर्त यह है कि ऐसा पट्टा प्रश्नगत संपत्ति के संबंध में प्रथम पट्टा होना चाहिए । जैसा कि ऊपर उल्लेख किया गया है कि भूखंड सं. ई-180, औद्योगिक क्षेत्र, कवि नगर, सेक्टर-17, गाजियाबाद का याची के हक में निष्पादित पट्टा उसी भूखंड का तीसरा पट्टा था । अतः याची तारीख 9 जुलाई, 2008 के उक्त सरकारी आदेश के फायदों के लिए हकदार नहीं है । अतः इस न्यायालय को यह उल्लिखित करने में कोई हिचकिचाहट नहीं है कि याची 30 सितंबर, 2010 के सरकारी आदेशों की अपेक्षाओं को पूरा नहीं करता जिससे कि वह इसके अधीन छूट का फायदा ले सके । ऐसी छूट के लिए उसका अभिवाक् विफल होता है । (पैरा 8, 9, 10, 11, 16, 17, 18 और 24)

आरंभिक (सिविल) प्रकीर्ण रिट अधिकारिता : **2013 के सिविल प्रकीर्ण रिट याचिका सं. 42808.**

संविधान, 1950 के अनुच्छेद 226 के अधीन सिविल प्रकीर्ण रिट याचिका ।

याची की ओर से श्री धीरेन्द्र कुमार श्रीवास्तव

प्रत्यर्थियों की ओर से मुख्य स्थायी काउंसेल

न्यायमूर्ति अरुण टंडन – यह रिट याचिका सहायक आयुक्त (स्टांप), गाजियाबाद द्वारा तारीख 5 जनवरी, 2011 को पारित आदेश तथा 2012-13 की अपील सं. 61 में आयुक्त मेरठ खंड, मेरठ द्वारा तारीख 1 फरवरी, 2013 को पारित आदेश को अभिखंडित करने के लिए फाइल की गई है ।

2. सहायक आयुक्त (स्टांप) गाजियाबाद ने तारीख 15 जनवरी, 2011 के आदेश द्वारा यह अभिनिर्धारित किया कि उत्तर प्रदेश राज्य, औद्योगिक

विकास निगम लिमिटेड (गाजियाबाद) द्वारा तारीख 24 अक्तूबर, 2008 को याची के हक में निष्पादित पट्टा विलेख पर दिया गया स्टांप शुल्क कम था । याची पर 1.5 प्रतिशत की दर से ब्याज सहित 8,91,420/- रुपए की शास्ति भी अधिरोपित की गई थी । यह अभिनिर्धारित किया गया है कि प्रश्नगत विलेख उत्तर प्रदेश राज्य औद्योगिक विकास निगम द्वारा संपत्ति के संबंध में किया गया प्रथम पट्टा नहीं था । अतः याची दावा की गई छूट के फायदे के लिए हकदार नहीं था । याची ने तारीख 19 अक्तूबर, 2012 को अर्थात् एक वर्ष और 10 मास की अवधि के पश्चात् आवेदन फाइल करके सहायक आयुक्त (स्टांप) के इस आदेश को इस अभिवाक् के आधार पर वापस लेने के लिए अनुरोध किया था कि धारा 47क के अधीन कार्यवाहियां एकपक्षीय रूप से विनिश्चित की गई थीं । सहायक आयुक्त (स्टांप) ने तारीख 1 फरवरी, 2013 के आदेश द्वारा उक्त आवेदन खारिज कर दिया । यह अभिलिखित किया गया है कि पर्याप्त सूचना के बावजूद याची ने धारा 47क के अधीन कार्यवाहियों में कोई आक्षेप प्रस्तुत नहीं किया । यह एक युक्तियुक्त आदेश था और इस आदेश को वापस लेने के लिए कोई मामला नहीं बनता है ।

3. याची ने सहायक आयुक्त के तारीख 15 जनवरी, 2011 के आदेश के विरुद्ध स्टांप अधिनियम की धारा 56 के अधीन आयुक्त मेरठ मंडल, मेरठ के समक्ष 2012-13 की अपील सं. 61 फाइल की । याची द्वारा फाइल की गई अपील यह अभिलिखित करने के पश्चात् खारिज कर दी गई कि धारा 47क के अधीन कार्यवाहियां तारीख 15 जनवरी, 2012 के आदेश द्वारा विनिश्चित की गई थीं । आदेश वापस लेने के लिए किया गया आवेदन एक वर्ष और 10 मास के पश्चात् फाइल किया गया था । आदेश वापस लेने के लिए फाइल किए गए आवेदन के खारिज होने के पश्चात् वर्तमान अपील विलंब की माफी के लिए परिसीमा अधिनियम की धारा 5 के अधीन आवेदन के साथ तारीख 15 जनवरी, 2011 के आदेश के विरुद्ध फाइल की गई है । यह अभिनिर्धारित किया गया कि अपील परिसीमा से अत्यधिक वर्जित है और इस संबंध में स्पष्टीकरण संतोषप्रद नहीं है ।

4. यह न्यायालय आरंभतः यह उल्लेख करना चाहता है कि अपील के ज्ञापन की प्रति (वर्तमान रिट याचिका का उपाबंध-10) से यह स्पष्ट होता है कि याची ने अपनी अपील में सहायक आयुक्त, गाजियाबाद के तारीख 1 फरवरी, 2013 के आदेश को आक्षेपित न करके केवल 15 जनवरी, 2011 के आदेश को ही आक्षेपित किया है । उक्त अपील के निर्देश में आयुक्त

मेरठ मंडल, मेरठ द्वारा तारीख 4 जुलाई, 2011 को आदेश पारित किया गया है ।

5. यह न्यायालय याची के साथ सारभूत न्याय करने के लिए उसे यह उपदर्शित करने के लिए अवसर देना चाहता है कि आयुक्त (स्टांप) गाजियाबाद के आदेश में क्या त्रुटि थी जिसमें यह अभिनिर्धारित किया गया है कि याची सरकार के तारीख 9 जुलाई, 2008 के आदेश के अनुसार छूट का फायदा पाने का हकदार नहीं है और किस प्रकार प्रश्नगत विलेख उत्तर प्रदेश राज्य औद्योगिक विकास निगम द्वारा संपत्ति के संबंध में किया गया प्रथम पट्टा था ।

6. याची के काउंसेल ने पट्टा विलेख का निर्देश करते हुए यह दलील दी है कि पट्टा विलेख में यह उल्लेख नहीं किया गया है कि यह उत्तर प्रदेश राज्य औद्योगिक विकास निगम द्वारा इसी भूखंड के संबंध में दूसरा या तीसरा विलेख है, तथापि, उन्होंने यह भी दलील दी है कि वह (याची) तारीख 30 सितंबर, 2010 के सरकारी आदेश के अधीन स्टांप शुल्क की छूट के लिए हक़दार था, भले ही तारीख 9 जुलाई, 2008 का सरकारी आदेश इस आधार पर अप्रवर्तनीय पाया जाता है कि प्रश्नगत पट्टा उत्तर प्रदेश राज्य औद्योगिक विकास निगम द्वारा संपत्ति के संबंध में प्रथम पट्टा नहीं था ।

7. यह न्यायालय ऊपर उद्धृत सरकारी आदेशों के निर्देश में याची के दावे की परीक्षा करेगा ।

8. प्रथमतः उन तथ्यों का उल्लेख करना उचित होगा जो याचिका के अभिलेख पर मौजूद हैं और जो विवादित नहीं हैं । औद्योगिक क्षेत्र, कवि नगर, सेक्टर-17, गाजियाबाद, उत्तर प्रदेश राज्य स्थित भूखंड सं. 180 का पट्टा, उत्तर प्रदेश राज्य औद्योगिक विकास निगम द्वारा प्रथम बार तारीख 20 मई, 1971 को 90 वर्ष की अवधि के लिए प्रेम चंद पुत्र राय बहादुर नामक व्यक्ति के हक में किया गया था और यह उत्तर प्रदेश राज्य विकास निगम द्वारा प्रश्नगत संपत्ति के बारे में किया गया प्रथम पट्टा था ।

9. उत्तर प्रदेश राज्य औद्योगिक विकास निगम द्वारा इसी भूखंड का दूसरा पट्टा तारीख 4 जनवरी, 1990 को मैसर्स, गाजियाबाद फुटवियर प्राइवेट लिमिटेड के हक में 71 वर्ष की अवधि के लिए अर्थात् ऊपर निर्दिष्ट शेष अवधि के लिए निष्पादित किया गया था ।

10. उत्तर प्रदेश राज्य औद्योगिक विकास निगम द्वारा इस संपत्ति का तीसरा पट्टा 52 वर्ष की शेष अवधि के लिए तारीख 24 अक्तूबर, 2008 को याची अवनीश कुमार गर्ग के हक में किया गया था । पट्टा विलेख की प्रति वर्तमान रिट याचिका में उपाबंध सं. 1 के रूप में उपाबद्ध की गई है । पट्टा विलेख के प्रथम और द्वितीय पृष्ठ पर रबड़ की मुद्रा लगी हुई है जिसमें पट्टे की अवधि 52 वर्ष के रूप में उल्लिखित है ।

11. तथापि, पट्टे के पृष्ठ सं. 27 के खंड 1 में यह उल्लिखित है कि पट्टा तारीख 30 अगस्त, 2008 से 90 वर्ष की अवधि के लिए किया गया है ।

12. इस संबंध में उपाबंध सं. 1 के रूप संलग्न दस्तावेज के प्रति निर्देश किया जा सकता है । यह उत्तर प्रदेश राज्य औद्योगिक विकास निगम, गाजियाबाद के क्षेत्रीय प्रबंधक का तारीख 6 जुलाई, 2013 का पत्र है जिसमें यह उल्लिखित है कि याची के हक में पट्टे के निष्पादन की तारीख को अर्थात् तारीख 4 अक्तूबर, 2008 को कनिष्ठ इंजीनियर की तारीख 9 जून, 2008 की रिपोर्ट के अनुसार भूखंड पर निम्नलिखित निर्माण पाए गए थे :–

(क) 18.6 मीटर x 4.2 मीटर का आफिस ब्लाक ।

(ख) 27.30 मीटर x 18.60 मीटर और 27.30 मीटर x 99.35 मीटर की कार्यशाला ।

13. तारीख 24 अक्तूबर, 2008 को पट्टे के निष्पादन की तारीख को 841.56 वर्ग मीटर के सम्पूर्ण क्षेत्र पर सन्निर्माण मौजूद थे ।

14. यह न्यायालय उपर्युक्त तथ्यात्मक पृष्ठभूमि में उन सरकारी आदेशों की प्रयोज्यता की परीक्षा करेगा जिनके आधार पर याची द्वारा स्टांप शुल्क से छूट का दावा किया गया है ।

15. प्रथम सरकारी आदेश तारीख 9 जुलाई, 2008 का है । यह सरकारी आदेश निम्नलिखित सीमा तक स्टांप शुल्क के संदाय के लिए उपबंध करता है :–

> "उस धनराशि पर जो धनराशि के समान प्रतिफल की धनराशि से अधिक है, प्रभार्य शुल्क की धनराशि की सीमा तक किसी व्यक्ति के हक में प्रथम बार स्थावर संपत्ति के अंतरण के लिए या प्रथम 10 वर्ष के लिए नियत किराए के मूल्य के लिए और धनराशि के लिए या

ऐसे जुर्माने का मूल्य या प्रीमियम या पट्टे में उल्लिखित रूप में अग्रिम के लिए ।"

16. उक्त सरकारी आदेश के परिशीलन मात्र से यह पूर्ण रूप से स्पष्ट होता है कि यह विभिन्न निगमों या उत्तर प्रदेश राज्य औद्योगिक विकास निगम, गाजियाबाद सहित राज्य के प्राधिकारियों द्वारा निष्पादित पट्टे के संबंध में उपदर्शित सीमा तक स्टांप शुल्क की वसूली से विलेखों को छूट प्रदान करता है, तथापि, शर्त यह है कि ऐसा पट्टा प्रश्नगत संपत्ति के संबंध में प्रथम पट्टा होना चाहिए ।

17. जैसा कि ऊपर उल्लेख किया गया है कि भूखंड सं. ई-180, औद्योगिक क्षेत्र, कवि नगर, सेक्टर-17, गाजियाबाद का याची के हक में निष्पादित पट्टा उसी भूखंड का तीसरा पट्टा था ।

18. अतः याची तारीख 9 जुलाई, 2008 के उक्त सरकारी आदेश के फायदों के लिए हकदार नहीं है ।

19. जहां तक तारीख 30 सितंबर, 2010 के सरकारी आदेश का संबंध है, यह इस तथ्य के होते हुए भी कि विलेख संपत्ति का प्रथम पट्टा था या नहीं, तारीख 1 अप्रैल, 2008 से तारीख 31 मार्च, 2009 के बीच निष्पादित विलेख के संबंध में तारीख 9 जुलाई, 2008 के सरकारी आदेश के फायदे प्रदान करता है बशर्ते कि निम्नलिखित दो शर्तें पूरी होती हों :–

I. अभिलेख उपर्युक्त अवधि अर्थात् तारीख 1 अप्रैल, 2008 से तारीख 31 मार्च, 2009 के बीच निष्पादित किया गया हो ;

II. यदि संपत्ति पर सन्निर्माण कर दिया गया हो तब, संबंधित संस्था के अधिकारी से यह उपदर्शित करते हुए एक प्रमाणपत्र जारी करना अपेक्षित है कि वह संपत्ति पर किए गए सन्निर्माण का ब्यौरा दे और ऐसे सन्निर्माण का अंतरण अभिलेख भी निष्पादित करे ।

20. अतः सरकारी आदेश संबंधित संस्था के अधिकारी पर और इस मामले के तथ्यों में उत्तर प्रदेश राज्य औद्योगिक विकास निगम पर संपत्ति के ऊपर पहले ही किए गए निर्माणों के ब्यौरे देने वाले प्रमाणपत्र जारी करने के लिए बाध्यता डालता है जो दूसरे या तीसरे पट्टे की विषयवस्तु है और किए गए निर्माणों के संबंध में पृथक् रूप से अन्तरण विलेख निष्पादित किया जाना चाहिए ।

21. याची द्वारा तारीख 6 जुलाई, 2013 को संलग्न की गई कागज पुस्तिका के पृष्ठ सं. 37 पर के दस्तावेज में याची ने स्वयं अभिलेख पर यह स्वीकार किया है कि जिस तारीख को उत्तर प्रदेश राज्य औद्योगिक विकास निगम द्वारा उसके हक में संपत्ति का तीसरा पट्टा निष्पादित किया गया था उस समय प्रश्नगत भूखंड पर 841.56 वर्ग मीटर पर सन्निर्माण किया जा चुका था ।

22. संबंधित अधिकारी अर्थात् क्षेत्रीय प्रबंधक ने इस आशय का एक प्रमाणपत्र जारी किया है, तथापि, इस बारे में जानबूझकर प्रकटीकरण नहीं किया गया है कि क्या पहले ही किए जा चुके सन्निर्माणों के संबंध में कोई पट्टा निष्पादित किया गया था जैसा कि तारीख 30 सितंबर, 2010 के सरकारी आदेश के अधीन अपेक्षित है ।

23. इस संबंध में याचिका में कोई उल्लेख नहीं है और याची का यह पक्षकथन नहीं है कि उन निर्माणों के बारे में कोई अंतरण विलेख निष्पादित किया गया था जो भूखंड पर पहले से मौजूद थे ।

24. अतः इस न्यायालय को यह उल्लिखित करने में कोई हिचकिचाहट नहीं है कि याची 30 सितंबर, 2010 के सरकारी आदेशों की अपेक्षाओं को पूरा नहीं करता जिससे कि वह इसके अधीन छूट का फायदा ले सके । ऐसी छूट के लिए उसका अभिवाक् विफल होता है ।

25. सामान्यतया इन कार्यवाहियों का निपटान हो जाता, तथापि, यह न्यायालय वर्तमान अधिकारिता में कार्य करते हुए यह उल्लेख करना चाहता है कि उन भूखंडों के पट्टा धारकों द्वारा इस न्यायालय के समक्ष वृहत् संख्या में रिट याचिकाएं फाइल की गई हैं जिनके हक में उत्तर प्रदेश राज्य औद्योगिक विकास निगम द्वारा पट्टे किए गए हैं और ये रिट याचिकाएं तारीख 9 जुलाई, 2008 के सरकारी आदेश के अनुसार इस आधार पर स्टांप शुल्क की छूट के लिए फाइल की गई हैं कि यह उत्तर प्रदेश राज्य औद्योगिक विकास निगम द्वारा प्रश्नगत भूखंड के संबंध में प्रथम पट्टा है ।

26. न्यायालय को यह सूचना दी गई है कि केवल वे पट्टे जो 90 वर्ष की अवधि के लिए किए गए हैं, प्रथम पट्टा है । अन्य सभी पट्टों में जहां 90 वर्ष से कम की अवधि के लिए किए गए हैं, वे या तो दूसरा पट्टा या तीसरा पट्टा है । यह बात स्वतः अभिलेख से सुनिश्चित की जा सकती है तथापि, यह स्वीकार किया गया है कि किसी भी पट्टे में

इस बारे में उल्लेख नहीं है कि यह भूखंड के संबंध में दूसरा या तीसरा पट्टा है ।

27. मेरी राय में उत्तर प्रदेश राज्य औद्योगिक विकास निगम द्वारा ऐसी स्थिति उत्पन्न की गई है जिसमें पट्टाधारकों को ऊपर निर्दिष्ट सरकारी आदेशों के अधीन स्टांप शुल्क से छूट का फायदा देने का मिथ्या बहाना (वचन) किया गया है ।

28. स्टांप अधिनियम के अधीन राजस्व प्राधिकारियों के लिए यह सुनिश्चित करना कठिन बन जाता है कि क्या तारीख 9 जुलाई, 2008 के सरकारी आदेश की शर्तों को पूरा किया गया है या नहीं ।

29. समान रूप में जहां प्रथम पट्टे के पश्चात् भूखंड पर निर्माण किया गया हो वहां इसे पश्चात्वर्ती पट्टा विलेखों में प्रकट नहीं किया गया है और न ही उत्तर प्रदेश राज्य औद्योगिक विकास निगम के संबंधित प्राधिकारी द्वारा तारीख 30 सितंबर, 2010 के सरकारी आदेश द्वारा यथा अपेक्षित कोई प्रमाणपत्र जारी किया गया है ।

30. उत्तर प्रदेश राज्य औद्योगिक विकास निगम द्वारा निष्पादित पट्टा विलेख में तात्विक तथ्यों का जानबूझकर अप्रकटीकरण यथास्थिति, तारीख 9 जुलाई, 2008 और तारीख 30 सितंबर, 2010 के सरकारी आदेशों के अधीन स्टांप शुल्क से छूट का फायदा देने के लिए किया गया है ।

31. राज्य के निगम के अधिकारी लोक कोषागार के हित में मनमानी रीति में कार्य करते हैं । इसे समाप्त किया जाना चाहिए । अतः यह न्यायालय निम्नलिखित रूप में निदेश करता है :–

(क) उत्तर प्रदेश राज्य औद्योगिक विकास निगम द्वारा भविष्य में निष्पादित किए जाने वाले सभी पटटा विलेखों में क्षेत्रीय प्रबंधक द्वारा यह प्रकट किया जाना चाहिए कि वह पट्टा प्रश्नगत भूखंड का प्रथम पट्टा है या नहीं और इसी भूखंड के संबंध में पूर्व में कितने पट्टा विलेख निष्पादित किए गए हैं और इस बारे में पूरा ब्यौरा होना चाहिए ।

(ख) जहां प्रथम पट्टे के निष्पादन के पश्चात् सन्निर्माण किया गया हो वहां क्षेत्रीय प्रबंधक को स्वतः निर्माणों की सीमा उपदर्शित करते हुए प्रमाणपत्र जारी करना चाहिए और उसमें यह भी प्रमाणित करना चाहिए कि क्या निर्माणों के संबंध में पृथक् अंतरण विलेख

निष्पादित किया गया है और अन्य अंतरण विलेखों की एक प्रति प्रमाणपत्र के साथ संलग्न की जानी चाहिए ।

(ग) धारा 47क के अधीन प्राधिकारी के समक्ष तारीख 1 अप्रैल, 1998 से तारीख 31 मार्च, 1999 के बीच निष्पादित विलेखों के संबंध में लंबित कार्यवाहियों में या उच्च न्यायालय के समक्ष धारा 56क के अधीन अपील में उत्तर प्रदेश राज्य औद्योगिक विकास निगम के क्षेत्रीय प्रबंधक को यह उपदर्शित करते हुए अपना शपथपत्र फाइल करना चाहिए कि क्या विवादित विलेख प्रश्नगत भूखंड का प्रथम, द्वितीय या तृतीय विलेख है या नहीं ।

(घ) राजस्व सचिव को यह निदेश दिया जाता है कि वह इस संबंध में जांच कराए कि उत्तर प्रदेश राज्य औद्योगिक विकास निगम द्वारा तारीख 1 अप्रैल, 1998 से तारीख 31 मार्च, 1999 के बीच ऐसे कितने पट्टा विलेख निष्पादित किए गए हैं जिनमें तारीख 9 जुलाई, 2008 और तारीख 30 सितंबर, 2010 के सरकारी आदेशों के अधीन अवैध रूप से स्टांप शुल्क से छूट का फायदा दिया गया है । उत्तर प्रदेश राज्य औद्योगिक विकास निगम के ऐसे जिम्मेदार अधिकारी के विरुद्ध विभागीय कार्यवाही की जानी चाहिए । राज्य को पहुंची हानि ऐसे जिम्मेदार अधिकारी से वसूल की जानी चाहिए । क्षेत्रीय प्रबंधक द्वारा ऐसे विलेखों के ब्यौरे जो एक ही भूखंड के तीसरे या चौथे विलेख थे, सचिव के समक्ष आज से 2 मास के भीतर दाखिल किए जाने चाहिए जिससे कि सचिव, उस सही हानि को सुनिश्चित करने के लिए जो पहुंचाई गई है, गाजियाबाद के राजस्व प्राधिकारियों से आवश्यक अभिलेख प्राप्त कर सके ।

32. रिट याचिका इस निदेश के साथ खारिज की जाती है कि सचिव द्वारा इस न्यायालय के महा रजिस्ट्रार के समक्ष 4 मास के भीतर अनुपालन रिपोर्ट प्रस्तुत की जाएगी ।

33. इस आदेश की प्रति स्थायी काउंसेल को संबंधित सचिव को आवश्यक सूचना देने के लिए जारी की जाए ।

रिट याचिका खारिज की गई ।

मह.

मोहम्मद रिहान और अन्य

बनाम

उत्तर प्रदेश राज्य और अन्य

तारीख 7 फरवरी, 2014

न्यायमूर्ति तरुण अग्रवाल और न्यायमूर्ति राजन राय

संविधान, 1950 – अनुच्छेद 14 – उत्तर प्रदेश राज्य सड़क परिवहन निगम में प्राइवेट बसों का लगाया जाना – पुरानी स्कीम के अधीन निगम और बस आपरेटरों के बीच करार – नई स्कीम आने पर पुरानी स्कीम रद्द करके नई स्कीम के अधीन नया करार – निगम द्वारा पुरानी दर से फीस का उद्ग्रहण – रिट याचिका द्वारा चुनौती – एक ही समय में चलाई जा रही बसों के बीच फीस उद्गृहीत करने के मामले में विभेद नहीं किया जा सकता – ऐसा करना अनुच्छेद 14 का अतिक्रमणकारी होगा ।

याचियों की बसें एक पूर्ववर्ती स्कीम के अनुसार उत्तर प्रदेश राज्य सड़क परिवहन निगम, लखनऊ द्वारा लगाई गई थीं जिसके अधीन निजी यान सार्वजनिक परिवहन के लिए लगाए गए थे और जिसके अनुसरण में तारीख 8 नवम्बर, 2010 को याचियों और यू.पी.एस.आर.टी.सी. के बीच एक करार हुआ था । बस स्वामियों को संदेय धनराशि से प्रशासनिक फीस काटी जाती थी । ऐसी फीस की दर जो यू.पी.एस.आर.टी.सी. द्वारा नियत की जानी थी, वस्तुतः 4.64 रुपए प्रति किलोमीटर नियत की गई थी । तत्पश्चात् प्रत्यर्थियों द्वारा तारीख 20 अक्तूबर, 2011 को एक अन्य स्कीम लाई गई थी । नई स्कीम के प्रवृत्त होने के बाद याचियों ने पूर्ववर्ती करार को रद्द करने के लिए एक आवेदन फाइल किया, जिसे प्रत्यर्थियों द्वारा स्वीकार किया गया और उक्त करार तारीख 27 मार्च, 2012 को रद्द कर दिया गया । तत्पश्चात् तारीख 4 अप्रैल, 2012 को एक नया करार तारीख 20 अक्तूबर, 2011 की नई स्कीम के अधीन याचियों और यू.पी.एस. आर.टी.सी. के बीच हुआ । तारीख 4 अप्रैल, 2012 के करार के खंड 12.3 के अनुसार यू.पी.एस.आर.टी.सी. द्वारा प्रशासनिक फीस निर्धारित की गई थी और याचियों को प्रति किलोमीटर आय से काटा जाना स्वीकार्य था और तद्नुसार बस स्वामियों के लिए संदेय धनराशि निर्धारित की गई थी । नई स्कीम के अधीन उक्त प्रशासनिक फीस निर्विवादित रूप से 3.75 रुपए

प्रति किलोमीटर निर्धारित की गई थी । तथापि, तारीख 6 अक्तूबर, 2012 के आक्षेपित आदेश द्वारा 4.64 रुपए प्रति किलोमीटर की दर से बढ़ी हुई प्रशासनिक फीस को इस आधार पर काटने का आदेश किया गया कि नई स्कीम के अधीन लगे हुए कुछ वाहन उपरोक्त दर पर पूर्वतर स्कीम के अधीन काम में लगे हुए हैं । उक्त आदेश से व्यथित होकर बस आपरेटरों द्वारा रिट याचिका फाइल की गई । रिट याचिका मंजूर करते हुए,

अभिनिर्धारित – जो भी स्थिति हो, यह तथ्य रह जाता है कि यू.पी.एस. आर.टी.सी. ने पुरानी स्कीम के अधीन करार के रद्दकरण के लिए याचियों के अनुरोध को स्वीकार किया और नई स्कीम के अधीन स्वयं अपनी इच्छा से याचियों के साथ नया करार किया । यू.पी.एस.आर.टी.सी. द्वारा नई स्कीम के अधीन प्रशासिनक फीस की दर 3.75 रुपए प्रति किलोमीटर निर्धारित की गई थी । इसलिए, यू.पी.एस.आर.टी.सी. यह अभिवाक् नहीं कर सकती कि चूंकि याचियों ने पूर्ववर्ती स्कीम के अधीन 4.64 रुपए प्रति किलोमीटर की दर से बस चलाने का प्रस्ताव दिया था, इसलिए वे नई स्कीम के अधीन 4.64 रुपए प्रति किलोमीटर की दर से प्रशासनिक फीस का संदाय करने के लिए दायी हैं । इसके अलावा न्यायालय ने यह भी अवेक्षा की है कि स्वामियों के बीच जिन्होंने पूर्ववर्ती स्कीम के अधीन अपनी बसें चलाने का प्रस्ताव दिया था और जिन्होंने नई स्कीम के अधीन अपनी बसें चलाने का प्रस्ताव दिया था, प्रशासनिक फीस की कटौती के प्रयोजन के लिए विभेद करने का आधार बिल्कुल भी तर्कसंगत नहीं है । यह कारण सही प्रतीत नहीं होता कि एक ही समय पर चलाई जा रही बसें केवल इस आधार पर भिन्न-भिन्न प्रशासनिक फीस का संदाय करें कि कुछ बसें पुरानी स्कीम के अधीन लगी हुई थीं और अन्य बसें नई स्कीम के अधीन लगाई गई हैं । ऐसे विभेद के लिए कोई तर्कसंगत आधार प्रतीत नहीं होता है और न ही इसका प्राप्त किए जाने वाले उद्देश्य से कोई संबंध प्रतीत होता है । इसके अलावा न तो करार में और न ही स्कीम में प्रशासनिक फीस की दर का उल्लेख किया गया है । यू.पी.एस.आर.टी.सी. पृथक् रूप से फीस निर्धारित किए जाने के लिए स्वतंत्र है और बस स्वामी भी ऐसी फीस स्वीकार करने के लिए स्वतंत्र हैं । इस संबंध में तारीख 4 अप्रैल, 2012 के करार के खंड 12.3 का निर्देश किया जा सकता है । स्पष्ट रूप से 4.64 रुपए प्रति किलोमीटर की दर से प्रशासनिक फीस बढ़ाना याचियों को स्वीकार्य नहीं था । सभी बसें एक ही समय पर चलाई जा रही हैं और यह पूर्णतया अनुचित प्रतीत होता है कि केवल इस आधार पर कि कुछ बसों को जो

पूर्ववर्ती स्कीम के अधीन लगाई गई थीं, उन बसों के मुकाबले उच्चतर प्रशासनिक फीस का संदाय करना चाहिए जो बाद में लगाई गई थीं । यह प्रशासनिक फीस के काटने के प्रयोजन के लिए वर्गीकरण के लिए एक विधिमान्य आधार नहीं हो सकता । प्रशासनिक फीस एक समान होनी चाहिए और ऐसा वर्गीकरण स्पष्ट रूप से भेदभावपूर्ण है और भारत के संविधान के अनुच्छेद 14 का अतिक्रमणकारी है । (पैरा 6)

आरंभिक (सिविल) प्रकीर्ण रिट : अधिकारिता **2012 की सिविल प्रकीर्ण रिट याचिका सं. 57367.**

संविधान, 1950 के अनुच्छेद 226 के अधीन रिट याचिका ।

याचियों की ओर से श्री अशोक कुमार पाण्डे

प्रत्यर्थियों की ओर से श्री समीर शर्मा

न्यायालय का निर्णय न्यायमूर्ति राजन राय ने दिया ।

न्या. राय – याचियों की बसें एक पूर्ववर्ती स्कीम के अनुसार उत्तर प्रदेश राज्य सड़क परिवहन निगम, लखनऊ (जिसे इसमें इसके पश्चात् "यू.पी.एस.आर.टी.सी." कहा गया है) द्वारा लगाई गई थीं जिसके अधीन निजी यान सार्वजनिक परिवहन के लिए लगाए गए थे और जिसके अनुसरण में तारीख 8 नवम्बर, 2010 को याचियों और यू.पी.एस.आर.टी.सी. के बीच एक करार हुआ था । बस स्वामियों को संदेय धनराशि से प्रशासनिक फीस काटी जाती थी । ऐसी फीस की दर जो यू.पी.एस.आर.टी.सी. द्वारा नियत की जानी थी, वस्तुतः 4.64 रुपए प्रति किलोमीटर नियत की गई थी । तत्पश्चात् प्रत्यर्थियों द्वारा तारीख 20 अक्तूबर, 2011 को एक अन्य स्कीम लाई गई थी । नई स्कीम के प्रवृत्त होने के बाद याचियों ने पूर्ववर्ती करार को रद्द करने के लिए एक आवेदन फाइल किया, जिसे प्रत्यर्थियों द्वारा स्वीकार किया गया और उक्त करार तारीख 27 मार्च, 2012 को रद्द कर दिया गया । तत्पश्चात् तारीख 4 अप्रैल, 2012 को एक नया करार तारीख 20 अक्तूबर, 2011 की नई स्कीम के अधीन याचियों और यू.पी.एस.आर.टी.सी. के बीच हुआ । तारीख 4 अप्रैल, 2012 के करार के खंड 12.3 के अनुसार यू.पी.एस.आर.टी.सी. द्वारा प्रशासनिक फीस निर्धारित की गई थी और याचियों को प्रति किलोमीटर आय से काटा जाना स्वीकार्य था और तद्नुसार बस स्वामियों के लिए संदेय धनराशि निर्धारित की गई थी । नई स्कीम के अधीन उक्त प्रशासनिक फीस निर्विवादित रूप से 3.75 रुपए प्रति किलोमीटर निर्धारित की गई थी ।

2. तथापि, तारीख 6 अक्तूबर, 2012 के आक्षेपित आदेश द्वारा 4.64 रुपए प्रति किलोमीटर की दर से बढ़ी हुई प्रशासनिक फीस को इस आधार पर काटने का आदेश किया गया कि नई स्कीम के अधीन लगे हुए कुछ वाहन उपरोक्त दर पर पूर्वतर स्कीम के अधीन काम में लगे हुए हैं ।

3. तारीख 27 फरवरी, 2013 को रिट याचिका के लंबित रहने के दौरान दूसरा आदेश पारित किया गया जिसके द्वारा नई स्कीम के अधीन 3.95 रुपए प्रति किलोमीटर की दर से प्रशासनिक फीस निर्धारित की गई ।

4. याचियों की यह शिकायत है कि जब एक बार तारीख 4 अप्रैल, 2012 को नया करार हो गया तो वे 4.64 रुपए प्रति किलोमीटर की दर से प्रशासनिक फीस का संदाय करने के लिए दायी नहीं हैं अपितु याचियों को संदत्त राशि से केवल 3.75 रुपए प्रति किलोमीटर की दर से फीस काटी जा सकती है, इसलिए तारीख 6 अक्तूबर, 2012 का आक्षेपित आदेश कायम रखे जाने योग्य नहीं है ।

5. इसके प्रतिकूल यू.पी.एस.आर.टी.सी. की ओर उपस्थित विद्वान् काउंसेल ने यह दलील दी है कि चूंकि याचियों को पूर्वतर करार के अधीन वाहन चलाने का प्रस्ताव दिया गया था जिसके अधीन प्रशासनिक फीस 4.64 रुपए प्रति किलोमीटर की दर से प्रभार्य थी, इसलिए याची 3.75 रुपए प्रति किलोमीटर की दर से प्रशासनिक फीस काटने के हकदार नहीं थे, जो केवल नई स्कीम के अधीन लागू थी और नया करार बाद में किया गया था । उन्होंने यह भी दलील दी कि विद्यमान संचालक नई स्कीम के अधीन उपरोक्त लाभों के लिए हकदार नहीं थे और यह केवल नए संचालकों के लिए उपलब्ध थी । उन्होंने यह भी दलील दी कि संविदा के खंड 12.3 के अधीन, प्रभार्य प्रशासनिक फीस की दर नियत करना यू.पी.एस.आर.टी.सी. का कार्य था ।

6. जो भी स्थिति हो, यह तथ्य रह जाता है कि यू.पी.एस.आर.टी.सी. ने पुरानी स्कीम के अधीन करार के रद्दकरण के लिए याचियों के अनुरोध को स्वीकार किया और नई स्कीम के अधीन स्वयं अपनी इच्छा से याचियों के साथ नया करार किया । यू.पी.एस.आर.टी.सी. द्वारा नई स्कीम के अधीन प्रशासनिक फीस की दर 3.75 रुपए प्रति किलोमीटर निर्धारित की गई थी । इसलिए, यू.पी.एस.आर.टी.सी. यह अभिवाक् नहीं कर सकती कि चूंकि याचियों ने पूर्ववर्ती स्कीम के अधीन 4.64 रुपए प्रति किलोमीटर की दर से बस चलाने का प्रस्ताव दिया था, इसलिए वे नई स्कीम के अधीन 4.64 रुपए प्रति किलोमीटर की दर से प्रशासनिक फीस का संदाय करने

के लिए दायी हैं । इसके अलावा हमने यह भी अवेक्षा की है कि स्वामियों के बीच जिन्होंने पूर्ववर्ती स्कीम के अधीन अपनी बसें चलाने का प्रस्ताव दिया था और जिन्होंने नई स्कीम के अधीन अपनी बसें चलाने का प्रस्ताव दिया था, प्रशासनिक फीस की कटौती के प्रयोजन के लिए विभेद करने का आधार बिल्कुल भी तर्कसंगत नहीं है । यह कारण सही प्रतीत नहीं होता कि एक ही समय पर चलाई जा रही बसें केवल इस आधार पर भिन्न-भिन्न प्रशासनिक फीस का संदाय करें कि कुछ बसें पुरानी स्कीम के अधीन लगी हुई थीं और अन्य बसें नई स्कीम के अधीन लगाई गई हैं । ऐसे विभेद के लिए कोई तर्कसंगत आधार प्रतीत नहीं होता है और न ही इसका प्राप्त किए जाने वाले उद्देश्य से कोई संबंध प्रतीत होता है । इसके अलावा न तो करार में और न ही स्कीम में प्रशासनिक फीस की दर का उल्लेख किया गया है । यू.पी.एस.आर.टी.सी. पृथक् रूप से फीस निर्धारित किए जाने के लिए स्वतंत्र है और बस स्वामी भी ऐसी फीस स्वीकार करने के लिए स्वतंत्र है । इस संबंध में तारीख 4 अप्रैल, 2012 के करार के खंड 12.3 का निर्देश किया जा सकता है । स्पष्ट रूप से 4.64 रुपए प्रति किलोमीटर की दर से प्रशासनिक फीस बढ़ाना याचियों को स्वीकार्य नहीं था । सभी बसें एक ही समय पर चलाई जा रही हैं और यह पूर्णतया अनुचित प्रतीत होता है कि केवल इस आधार पर कि कुछ बसों को जो पूर्ववर्ती स्कीम के अधीन लगाई गई थीं, उन बसों के मुकाबले उच्चतर प्रशासनिक फीस का संदाय करना चाहिए जो बाद में लगाई गई थीं । यह प्रशासनिक फीस के काटने के प्रयोजन के लिए वर्गीकरण के लिए एक विधिमान्य आधार नहीं हो सकता । प्रशासनिक फीस एक समान होनी चाहिए और ऐसा वर्गीकरण स्पष्ट रूप से भेदभावपूर्ण है और भारत के संविधान के अनुच्छेद 14 का अतिक्रमणकारी है ।

7. उपरोक्त चर्चा को ध्यान में रखते हुए तारीख 6 अक्तूबर, 2012 का आक्षेपित आदेश एतद्द्वारा अभिखंडित किया जाता है । रिट याचिका मंजूर की जाती है । प्रत्यर्थी उस समय तक नई स्कीम के अधीन 3.75 रुपए प्रति किलोमीटर की दर से प्रशासनिक फीस ले सकते हैं, जब तक कि यह प्रवृत्त रहे और तारीख 27 फरवरी, 2013 के आदेश के अनुसरण में 3.95 रुपए प्रति किलोमीटर की दर से प्रभार लेने के लिए हकदार होंगे ।

रिट याचिका मंजूर की गई ।

मही./मह.

राज कुमार शर्मा (डा.)

बनाम

बिहार राज्य और अन्य

तारीख़ 9 अक्तूबर, 2013

न्यायमूर्ति मिहिर कुमार झा

मानव अधिकार संरक्षण अधिनियम, 1994 (1994 का 10) – धारा 17 और 18 [सपठित संविधान 1950 – अनुच्छेद 226] – सरकारी कर्मचारी को पदभार ग्रहण करने से रोका जाना – मानव अधिकार आयोग में शिकायत – आयोग के समक्ष लिखित कथन में कतिपय अभिवाक् न किया जाना – उच्च न्यायालय के समक्ष रिट याचिका में कतिपय नए मुद्दे उठाया जाना – रिट याचिका में नए मुद्दों को अनुज्ञात नहीं किया जा सकता ।

मानव अधिकार आयोग अधिनियम, 1994 – धारा 17 और 18 – सरकारी कर्मचारी को पदभार ग्रहण न कराकर परेशान और तंग किया जाना – कर्मचारी द्वारा शिकायत करने पर उसके विरुद्ध दुर्व्यवहार आदि का लांछन – आयोग द्वारा प्राधिकारी के विरुद्ध कार्यवाही करके कर्मचारी को प्रतिकर दिलाया जाना – प्राधिकारी द्वारा आदेश को आक्षेपित करते हुए रिट याचिका फाइल किया जाना – आयोग के विनिश्चय में कोई त्रुटि न होने के कारण हस्तक्षेप करना उचित नहीं है ।

मानव अधिकार आयोग अधिनियम, 1994 – धारा 17 और 18 [सपठित संविधान, 1950 – अनुच्छेद 226] – प्राधिकारी द्वारा हाजिरी रजिस्टर आदि में प्रक्षेपांश करके सरकारी कर्मचारी को तंग किया जाना – मानव अधिकार आयोग में शिकायत – आयोग द्वारा प्रतिकर अधिनिर्णीत करते हुए प्राधिकारी के विरुद्ध विभागीय कार्यवाही करने का आदेश – आदेश को रिट याचिका फाइल करके उच्च न्यायालय में आक्षेपित किया जाना – जहां विधि द्वारा स्थापित सिद्धांतों और नैसर्गिक न्याय के नियमों का अनुसरण करते हुए प्रशासनिक विनिश्चय किया गया है और व्यक्ति को ऋजु उपचार प्राप्त हुआ है वहां न्यायालय ऐसे प्रशासनिक निर्णय के ऊपर अपना निर्णय प्रतिस्थापित नहीं कर सकता बशर्ते कि प्राधिकारी द्वारा ऐसा

निर्णय अपनी अधिकारिता के भीतर किया गया हो ।

बिहार मानव अधिकार आयोग, पटना के माननीय अध्यक्ष अर्थात् प्रत्यर्थी सं. 3 द्वारा तारीख 3 अप्रैल, 2013 को पारित आक्षेपित आदेश जिसे प्रत्यर्थी सं. 4 द्वारा तारीख 5 अप्रैल, 2013 के पत्र बी.एच.आर.ई./ काम्प. 945/2012, 4435 द्वारा जारी किया गया है और जो इस आवेदन में उपाबंध-13 के रूप में उपाबद्ध किया गया है, को अभिखंडित किए जाने के लिए वर्तमान रिट याचिका फाइल की गई है । उक्त आदेश द्वारा प्रत्यर्थी सं. 3 ने याची के वेतन से 40,000/- रुपए की कटौती करने तथा उसे 6 सप्ताह के भीतर प्रत्यर्थी सं. 11 को संदत्त करने के लिए सिविल सर्जन, मुजफ्फरपुर और कोषाधिकारी मुजफ्फरपुर-सहयुक्त-चिकित्सा अधिकारी को आदेशित किया गया है । इसके अतिरिक्त प्रत्यर्थी सं. 3 को यह भी आदेश दिया गया है कि शासकीय अभिलेखों में अन्तर्वेशन/कूटरचना करने के लिए याची के विरुद्ध विभागीय कार्यवाही आरंभ की जाए । रिट आवेदन में यह भी अनुरोध किया गया है कि प्रत्यर्थियों को, प्रत्यर्थी सं. 3 द्वारा याची के विरुद्ध आक्षेपित सभी आधारहीन अभिकथनों/आरोपों से मुक्त करने के लिए परमादेश प्रकृति की समुचित रिट जारी की जाए । याचिका खारिज करते हुए,

अभिनिर्धारित – आयोग ने स्वास्थ्य सेवा के मुख्य निदेशक, सिविल सर्जन सहित संबंधित प्राधिकारियों तथा भारसाधक चिकित्सा अधिकारी की क्षमता में याची को सूचना जारी करने के पश्चात् न केवल उन्हें सुनवाई का अवसर दिया अपितु आक्षेपित आदेश पारित करने से पूर्व मूल अभिलेखों का परिशीलन भी किया । इसे दृष्टिगत करते हुए याची को रिट न्यायालय में प्रथम बार ऐसा कोई विवाद्यक उठाने के लिए अनुज्ञात नहीं किया जा सकता जो उसने आयोग के समक्ष फाइल किए गए अपने लिखित कथन में नहीं उठाया था । याची के सम्पूर्ण लिखित कथन के परिशीलन मात्र से जिस पर दलीलों के दौरान जोर दिया गया है, यह प्रतीत नहीं होता कि उसने आयोग के समक्ष कभी भी इस बात पर बल दिया था कि प्रत्यर्थी सं. 11 को वेतन का संदाय न करने के लिए मुख्य रूप से डा. सुधीर कुमार सिन्हा जिम्मेदार था । तथ्यत: उसने आयोग के समक्ष यह अभिवाक् भी नहीं किया था कि वह प्रत्यर्थी सं. 11 को पद ग्रहण करने को अनुज्ञात न करने के लिए और तारीख 9 दिसंबर, 2011 की तारीख से पूर्व के वेतन का संदाय न करने के लिए जिम्मेदार नहीं है । अत: याची का यह अभिवाक् इस न्यायालय के समक्ष प्रथम बार किया जाना प्रतीत होता है । इस

पृष्ठभूमि में ही आयोग के निष्कर्ष की परीक्षा की जानी चाहिए । आयोग के इस निष्कर्ष में यह अभिलिखित किया गया है कि हाजिरी रजिस्टर में प्रक्षेपांश किया गया था जिससे यह उपदर्शित होता है कि प्रत्यर्थी सं. 11 को मीनापुर स्वास्थ्य केन्द्र में तैनाती पर पद ग्रहण करने के बावजूद तंग किया जा रहा था । इस न्यायालय की सुविचारित राय में अधिकरण द्वारा मूल अभिलेखों के परिशीलन के आधार पर निकाला गया तथ्य का ऐसा महत्वपूर्ण निष्कर्ष और सिविल सर्जन तथा उप निदेशक स्वास्थ्य सेवा की ओर से की गई स्वीकारोक्ति को दृष्टिगत करते हुए विशेषतया याची के स्वयं के कथन के आधार पर इस न्यायालय द्वारा उचित रूप से हस्तक्षेप नहीं किया जा सकता । आयोग ने इस पहलू पर विचार किया है कि याची ने न केवल हाजिरी रजिस्टर में प्रत्यर्थी सं. 11 के नाम के संबंध में प्रक्षेपांश किया अपितु प्रत्यर्थी सं. 11 को कार्य न करने देने और उसका वेतन न देने के लिए अपनी कार्रवाई को न्यायोचित ठहराने के लिए अभिलेख भी तैयार किया । जहां तक याची के विद्वान् काउंसेल श्री ईश्वार की इस दलील का संबंध है कि डा. सुधीर कुमार सिन्हा प्राथमिक स्वास्थ्य केन्द्र, मीनापुर का भारसाधक चिकित्सा अधिकारी था, याची ने आयोग के समक्ष अपने लिखित कथन में इस अभिवाक् को नहीं उठाया था । अत: आयोग ने अभिलेख पर की सामग्री के आधार पर विशेषतया हाजिरी रजिस्टर के आधार पर सम्पूर्ण मामले को विनिश्चित करने में कोई त्रुटि नहीं की है, जैसाकि ऊपर उल्लेख किया गया है कि प्रत्येक मास में प्रक्षेपांश पाया गया था । (पैरा 6, 11, 12, 13 और 14)

यह तथ्य कि याची जनवरी, 2012 के प्रथम सप्ताह में उस सिविल सर्जन की उपस्थिति में प्रत्यर्थी सं. 11 के साथ अभिकथित दुर्व्यवहार के संबंध में आयोग के समक्ष अपनी प्रतिरक्षा को साबित नहीं कर सका, जिसकी उसने अभिकथित रूप से दूरभाष पर घटना के बारे में सूचना दी थी, स्वत: ही याची के पक्षकथन को पूर्ण रूप से ध्वस्त कर देता है । यदि प्रत्यर्थी सं. 11 ने उसके साथ दुर्व्यवहार किया था तो उसे कोई भी दांडिक मामला दर्ज कराने से नहीं रोक सकता था या कम से कम वह जनवरी, 2012 के मास में रिपोर्ट कर सकता था । यह उल्लेखनीय है कि आयोग के समक्ष प्रत्यर्थी सं. 11 की शिकायत तारीख 2 मार्च, 2012 को फाइल की गई थी और इसलिए याची द्वारा तारीख 2 मार्च, 2012 के पश्चात् अवलंब लिए जाने वाले किसी दस्तावेज को पूर्ण सतर्कता और सावधानी के साथ पढ़ा जाना चाहिए क्योंकि ये दस्तावेज गढ़े हुए पाए गए हैं जैसाकि आयोग द्वारा मत व्यक्त किया गया है । अत: श्री ईश्वार की दलीलों पर

गहराई से विचार करने तथा अभिलेख पर की सामग्री का परिशीलन करने के पश्चात् इस न्यायालय को आयोग के प्रत्यर्थी सं. 11 को परेशान किए जाने के लिए प्रतिकर के रूप में 40,000/- रुपए का संदाय करने के आदेश में तथा इस आदेश में कि राज्य सरकार याची के विरुद्ध सभी महत्वपूर्ण हाजिरी रजिस्टरों सहित दस्तावेजों में प्रक्षेपांश करने और उन्हें गढ़कर अवचार करने के लिए याची के विरुद्ध विभागीय कार्यवाही आरंभ करने का निदेश देने में कोई त्रुटि प्रतीत नहीं होती जैसाकि याची द्वारा किया गया है । तथ्यों का विश्लेषण करने के पश्चात् इस न्यायालय का इस बाबत पूर्ण समाधान हो गया है कि आयोग के प्रक्रियात्मक विनिश्चय में कोई त्रुटि नहीं है । अत: इस न्यायालय के लिए आयोग द्वारा निकाले गए निष्कर्षों में हस्तक्षेप करना कठिन प्रतीत होता है । (पैरा 16, 17 और 18)

न्यायिक पुनर्विलोकन किसी विनिश्चय के विरुद्ध अपील नहीं है अपितु वह इस रीति का पुनर्विलोकन है जिसमें न्यायालय ने न्यायिक पुनर्विलोकन की शक्ति के प्रयोग में विनिश्चय किया है जिसमें इस तथ्य के प्रति सतर्क रहना चाहिए कि यदि विनिश्चय विधि द्वारा स्थापित सिद्धांतों और नैसर्गिक न्याय के नियमों का अनुसरण करने के पश्चात् प्रशासनिक रूप से लिया गया है और व्यक्ति को अपने विरुद्ध मामले के समाधान के लिए ऋजु उपचार प्राप्त हुआ है तो न्यायालय ऐसे मामले में प्रशासनिक प्राधिकारी के निर्णय के ऊपर अपना निर्णय प्रतिस्थापित नहीं कर सकता जहां ऐसा निर्णय उस प्राधिकारी द्वारा अपनी अधिकारिता के क्षेत्र के भीतर उचित रूप से दिया गया है । यह भी सुस्थापित सिद्धांत है कि यद्यपि प्रशासनिक कार्रवाई का न्यायिक पुनर्विलोकन लचीला होना चाहिए और इसके आयाम को बंद नहीं किया जाना चाहिए, तथापि, न्यायालय न्यायिक पुनर्विलोकन की शक्ति के प्रयोग में ऐसे निष्कर्षों की विधिमान्यता पर विचार नहीं कर सकता जो युक्तियुक्त रूप से साक्ष्य द्वारा समर्थित हों और ऐसी कार्यवाहियों द्वारा निकाले गए हों जिसमें ऐसी प्रक्रियात्मक अवैधता या अनियमितताओं का दोष नहीं निकाला जा सकता, जो प्रक्रिया को दूषित करती हों और जिसके द्वारा विनिश्चय न्यायिक पुनर्विलोकन का विनिश्चय किया गया हो और यह बात ध्यान में रखी जानी चाहिए कि यह विनिश्चय के विरुद्ध न हो अपितु विनिश्चय करने वाली प्रक्रिया की परीक्षा तक निर्बंधित हो । अत: आयोग द्वारा पारित आदेश के विरुद्ध न्यायिक पुनर्विलोकन के अत्यंत परिसीमित क्षेत्र को दृष्टिगत करते हुए यह न्यायालय उपर्युक्त चर्चा के आधार पर आक्षेपित आदेश में जो विधि के

नियमों को मानने वाले लोगों का पूर्ण विश्वास स्थापित करता हो और बुराई के विरुद्ध लड़ने के लिए धनवान और निर्धन दोनों में आशा उत्पन्न करने वाला हो, हस्तक्षेप करना उचित नहीं समझता । तथापि, इस मामले को निपटाने से पूर्व यह न्यायालय यह स्पष्ट करना चाहता है कि यद्यपि याची आज से एक मास की अवधि के भीतर प्रत्यर्थी सं. 11 को 40,000/- रुपए की धनराशि का संदाय करने के लिए जिम्मेदार होगा, तथापि, आयोग के आक्षेपित आदेश में ऐसा कुछ नहीं कहा गया है अथवा इस आदेश में भी ऐसा कुछ नहीं कहा जा रहा है, जो विभागीय प्राधिकारियों को याची के विरुद्ध विभागीय कार्यवाहियां करने और निपटाने से निवारित करे । ऐसी कार्यवाही स्वयं अपने गुण-दोष के आधार पर विनिश्चित की जानी चाहिए । तथापि, ऐसी विभागीय कार्यवाहियां इस आदेश की प्राप्ति की तारीख से 6 मास की अवधि के भीतर आरंभ करके निपटाई जाएंगी । (पैरा 19, 20, 22 और 23)

निर्दिष्ट निर्णय

पैरा

[1982] (1982) 3 आल. ई. आर. 141 :
चीफ कांस्टेबल आफ दि नार्थ वेल्स पुलिस
बनाम **इवान्स** ; 20

[1972] (1972) 4 एस. सी. सी. 618 :
भारत संघ बनाम **सरदार बहादुर** । 21

आरंभिक (सिविल) रिट अधिकारिता : 2013 का सिविल रिट मामला सं. 11308.

संविधान, 1950 के अनुच्छेद 226 के अधीन सिविल रिट याचिका ।

याची की ओर से श्री सुरेश कुमार ईश्वार

प्रत्यर्थी की ओर से श्री ऋषिराज सिन्हा

न्यायमूर्ति मिहिर कुमार झा – पक्षकारों के विद्वान् काउंसेलों को सुना ।

2. याची ने इस रिट आवेदन में निम्नलिखित रूप में अनुरोध किया है – बिहार मानव अधिकार आयोग, पटना के माननीय अध्यक्ष अर्थात् प्रत्यर्थी सं. 3 द्वारा तारीख 3 अप्रैल, 2013 को पारित आक्षेपित आदेश को जिसे प्रत्यर्थी सं. 4 द्वारा तारीख 5 अप्रैल, 2013 के पत्र

बी.एच.आर.ई./काम्प. 945/2012, 4435 द्वारा जारी किया गया है और जो इस आवेदन में उपाबंध-13 के रूप में उपाबद्ध किया गया है, अभिखंडित किया जाए । उक्त आदेश द्वारा प्रत्यर्थी सं. 3 ने याची के वेतन से 40,000/- रुपए की कटौती करने तथा उसे 6 सप्ताह के भीतर प्रत्यर्थी सं. 11 को संदत्त करने के लिए सिविल सर्जन, मुजफ्फरपुर और कोषाधिकारी मुजफ्फरपुर-सहयुक्त-चिकित्सा अधिकारी को आदेशित किया गया है । इसके अतिरिक्त प्रत्यर्थी सं. 3 को यह भी आदेश दिया गया है कि शासकीय अभिलेखों में अन्तर्वेशन/कूटरचना करने के लिए याची के विरुद्ध विभागीय कार्यवाही आरंभ की जाए । रिट आवेदन में यह भी अनुरोध किया गया है कि प्रत्यर्थियों को, प्रत्यर्थी सं. 3 द्वारा याची के विरुद्ध आक्षेपित सभी आधारहीन अभिकथनों/आरोपों से मुक्त करने के लिए परमादेश प्रकृति की समुचित रिट जारी की जाए ।

3. याची के विद्वान् काउंसेल ने उपर्युक्त अनुरोध के समर्थन में यह दलील दी कि मानव अधिकार आयोग (जिसे आगे संक्षेप में 'आयोग' कहा गया है) इस बात पर विचार करने में विफल रहा है कि याची अभिकथित अवचार के लिए दोषी अभिनिर्धारित नहीं किया जा सकता क्योंकि उसने तारीख 15 नवंबर, 2014 को भारसाधक चिकित्सा अधिकारी, मीनापुर के रूप में पद ग्रहण कर लिया था और तारीख 9 दिसंबर, 2011 से कार्य करना आरंभ कर दिया था और इसलिए प्रत्यर्थी सं. 11 की पदभार ग्रहण रिपोर्ट स्वीकार नहीं की जा सकती । उन्होंने यह भी दलील दी कि याची ने उच्चतर प्राधिकारियों से बार-बार पत्र व्यवहार किया था, तथापि, प्रत्यर्थी सं. 11 के पदभार ग्रहण करने को अनुज्ञात न करने के संबंध में किसी अनुदेश के अभाव में वह स्वयं कोई विनिश्चय नहीं कर सकता था जिसके लिए उसे आयोग द्वारा अकेले ही दोषी ठहराया गया है । याची के विद्वान् काउंसेल के अनुसार पदभार ग्रहण करने को अस्वीकार करने के लिए और प्रत्यर्थी सं. 11 के वेतन का संदाय न करने के लिए डा. सुधीर कुमार सिन्हा नामक व्यक्ति ही मुख्य रूप से जिम्मेदार था और इस प्रयोजन के लिए अपर मुख्य चिकित्सा अधिकारी, मुजफ्फरपुर द्वारा याची के निर्दोष होने से संबंधित तथ्य संबंधी निष्कर्ष रिपोर्ट का अवलंब लिया गया है ।

4. इसके प्रतिकूल राज्य के विद्वान् काउंसेल ने आयोग द्वारा अभिलिखित निष्कर्षों का समर्थन करते हुए यह दलील दी है कि इसमें कोई प्रक्रियात्मक कमजोरी नहीं है और इसलिए इस न्यायालय द्वारा भारत के संविधान के अनुच्छेद 226 के अधीन अपनी शक्ति के प्रयोग द्वारा

हस्तक्षेप किए जाने की कोई आवश्यकता नहीं है ।

5. इससे पूर्व कि यह न्यायालय उपर्युक्त दलीलों का विश्लेषण करे, यह उल्लेख किया जा सकता है कि तारीख 12 मार्च, 2012 को श्रीमती रेणु सिन्हा द्वारा मानव अधिकार आयोग के अध्यक्ष के समक्ष एक परिवाद फाइल किया गया था जिसमें उसने यह अभिकथित किया था कि याची ने प्राथमिक स्वास्थ्य केन्द्र, मीनापुर के भारसाधक चिकित्सा अधिकारी की क्षमता में प्रत्यर्थी सं. 11 को मानसिक, शारीरिक और वित्तीय हानि पहुंचाई है क्योंकि उसने प्रत्यर्थी सं. 11 को उसकी उपस्थिति दर्ज करने के लिए अनुज्ञात नहीं किया और उसे वेतन, यात्रा भत्ता और अन्य स्वीकार्य भत्तों से भी वंचित किया । आयोग के समक्ष किए गए परिवाद में यह भी अभिकथित किया गया था कि याची ने प्रत्यर्थी सं. 11 की संपत्ति विवरणिका और आयकर विवरणिका स्वीकार नहीं की ।

6. आयोग ने स्वास्थ्य सेवा के मुख्य निदेशक, सिविल सर्जन सहित संबंधित प्राधिकारियों तथा भारसाधक चिकित्सा अधिकारी की क्षमता में याची को सूचना जारी करने के पश्चात् न केवल उन्हें सुनवाई का अवसर दिया अपितु आक्षेपित आदेश पारित करने से पूर्व मूल अभिलेखों का परिशीलन भी किया । इसे दृष्टिगत करते हुए याची को रिट न्यायालय में प्रथम बार ऐसा कोई विवाद्यक उठाने के लिए अनुज्ञात नहीं किया जा सकता जो उसने आयोग के समक्ष फाइल किए गए अपने लिखित कथन में नहीं उठाया था ।

7. याची के विद्वान् काउंसेल ने ऋजुतापूर्वक लिखित कथन की प्रति पेश की है जिसे इस मामले के अभिलेख पर रखा गया । याची ने लिखित कथन में यह अभिवाक् किया था कि प्रत्यर्थी सं. 11 ने तारीख 30 जून, 2011 को सिविल सर्जन द्वारा उसे स्थानांतरित किए जाने के पश्चात् और तारीख 24 अक्तूबर, 2011 को प्राथमिक स्वास्थ्य केन्द्र, साहिब गंज से निर्मुक्त किए जाने के पश्चात् तारीख 25 अक्तूबर, 2011 को प्राथमिक स्वास्थ्य केन्द्र, में अपनी पद ग्रहण रिपोर्ट प्रस्तुत की थी और पद ग्रहण रिपोर्ट प्रस्तुत किए जाने के पश्चात् वह गायब हो गया, यद्यपि उसका नाम प्राथमिक स्वास्थ्य केन्द्र के कर्मचारियों के उपस्थिति रजिस्टर में दर्ज कर दिया गया था । याची द्वारा आयोग के समक्ष पेश किए गए लिखित कथन से यह स्पष्ट है कि उसने यह अभिवाक् किया था कि उसने प्राथमिक स्वास्थ्य केन्द्र, मीनापुर में ड्यूटी से उसकी अनुपस्थिति के संबंध में तारीख 29 नवंबर, 2011 को प्रत्यर्थी सं. 11 से स्पष्टीकरण मांगा था, तथापि,

प्रत्यर्थी सं. 11 ने न तो अपना स्पष्टीकरण दिया और न ही वह उसके समक्ष उपस्थित हुआ ।

8. आयोग के समक्ष फाइल अपने लिखित कथन में याची ने यह भी कथन किया है कि उसे तारीख 24 दिसंबर, 2011 को पत्र सं. 2975 द्वारा और तारीख 2 जनवरी, 2012 को सिविल सर्जन, मुजफ्फरपुर से निदेश प्राप्त होने के पश्चात् उसने तारीख 4 जनवरी, 2012 को प्रत्यर्थी सं. 11 को अपना अंतिम वेतन प्रमाणपत्र, बैंक खाता सं. और अपनी सेवा पुस्तिका तथा अप्राधिकृत रूप से अनुपस्थिति के लिए कारण बताने के लिए एक पत्र लिखा था । यह दावा किया गया है कि तारीख 4 जनवरी, 2012 का उक्त पत्र भारसाधक चिकित्सा अधिकारी, साहिब गंज जहां प्रत्यर्थी सं. 11 पूर्व में नियुक्त था, के जरिए साधारण डाक द्वारा प्रत्यर्थी सं. 11 को भेजा गया था ।

9. याची द्वारा लिखित कथन के पैरा 9 में यह भी अभिवाक् किया गया था कि जनवरी, 2012 के प्रथम सप्ताह में प्रत्यर्थी सं. 11 ने अपनी उपस्थिति दर्ज करने के लिए उस पर दबाव डाला था और याची द्वारा ऐसा करने के लिए मना करने पर उससे बदतमीजी की गई थी और उसके पश्चात् वह पुन: गायब हो गया था । याची ने यह भी दावा किया है कि उसने प्रत्यर्थी सं. 11 द्वारा उपर्युक्त दुराचार करने के संबंध में दूरभाष पर सिविल सर्जन को सूचना भी दी थी और इसके पश्चात् प्रत्यर्थी सं. 11 के दुर्व्यवहार के संबंध में तारीख 11 अप्रैल, 2012 को लिखित रिपोर्ट भी प्रस्तुत की थी । याची के अनुसार उसने तारीख 26 जून, 2012 को याची से स्पष्टीकरण भी मांगा था ।

10. अपर मुख्य चिकित्सा अधिकारी जिसने तारीख 9 अगस्त, 2012 को अपनी रिपोर्ट प्रस्तुत की थी, द्वारा इस संबंध में की गई जांच के प्रति भी निर्देश किया गया है । याची का यह भी पक्षकथन है कि अपर मुख्य चिकित्सा अधिकारी द्वारा तारीख 6 फरवरी, 2013 के ज्ञापन सं. 235 में उल्लिखित सिविल सर्जन को भेजे गए पत्र के जवाब में एक अन्य जांच रिपोर्ट भी सिविल सर्जन को तारीख 22 फरवरी, 2013 को प्रस्तुत की गई थी । याची ने यह भी अभिवाक् किया है कि प्रत्यर्थी सं. 11 को तारीख 2 जुलाई, 2012 से नियमित रूप से वेतन संदत्त किया गया था । यह उल्लेखनीय है कि याची ने यह भी दावा किया था कि उसके लिखित कथन में लिए गए आधार के समर्थन में आयोग के परिशीलन के लिए प्रेषण रजिस्टर और उपस्थिति रजिस्टर पेश किए गए थे ।

11. याची के सम्पूर्ण लिखित कथन के परिशीलन मात्र से जिस पर दलीलों के दौरान जोर दिया गया है, यह प्रतीत नहीं होता कि उसने आयोग के समक्ष कभी भी इस बात पर बल दिया था कि प्रत्यर्थी सं. 11 को वेतन का संदाय न करने के लिए मुख्य रूप से डा. सुधीर कुमार सिन्हा जिम्मेदार था । तथ्यत: उसने आयोग के समक्ष यह अभिवाक् भी नहीं किया था कि वह प्रत्यर्थी सं. 11 को पद ग्रहण करने को अनुज्ञात न करने के लिए और तारीख 9 दिसंबर, 2011 की तारीख से पूर्व के वेतन का संदाय न करने के लिए जिम्मेदार नहीं है । अत: याची का यह अभिवाक् इस न्यायालय के समक्ष प्रथम बार किया जाना प्रतीत होता है ।

12. इस पृष्ठभूमि में ही आयोग के निष्कर्ष की परीक्षा की जानी चाहिए । आयोग के इस निष्कर्ष में यह अभिलिखित किया गया है कि हाजिरी रजिस्टर में प्रक्षेपांश किया गया था जिससे यह उपदर्शित होता है कि प्रत्यर्थी सं. 11 को मीनापुर स्वास्थ्य केन्द्र में तैनाती पर पद ग्रहण करने के बावजूद तंग किया जा रहा था । इस संबंध में अधिकरण ने इस प्रकार अभिनिर्धारित किया है :–

> "निस्संदेह ओम प्रकाश सिन्हा को अनुपस्थित दिखाया गया है । उसके नाम के विरुद्ध स्तम्भ पर घेरा लगाया गया है और कुछ तारीखों पर 'ए' (अनुपस्थित) लिखा गया है । तथापि, यह पूर्णतया स्पष्ट है कि सभी प्रविष्टियां बाद में की गई हैं और ओम प्रकाश सिन्हा के नाम के सामने भिन्न स्याही से की गई हैं अर्थात् कर्मचारियों की सूची में अंतिम नाम के पश्चात् की गई हैं । इस तथ्य को दृष्टिगत करते हुए कि उसने 25 अक्तूबर को अपनी पद ग्रहण रिपोर्ट प्रस्तुत की थी, यह बात समझ में आती है कि प्राथमिक स्वास्थ्य केन्द्र में तैनात कर्मचारियों की सूची में उसका नाम बढ़ाया गया होगा और इसलिए उसका नाम सूची के नीचे भिन्न स्याही से लिखा गया है, तथापि, यह बात समझ में आने योग्य नहीं है कि तारीख 26 फरवरी, 2013 के आयोग द्वारा अभिलेख पेश किए जाने का निदेश करने के पश्चात् क्यों उसका नाम उपस्थिति रजिस्टर में जोड़ा/सम्मिलित किया गया था । डा. ज्ञान भूषण सिविल सर्जन, मुजफ्फरपुर और डा. नागेन्द्र प्रसाद सिंह उप निदेशक स्वास्थ्य सेवा ने भी ऋजुतापूर्वक यह स्वीकार किया है कि प्रविष्टियां भिन्न स्याही से की गई हैं और बाद में की जानी प्रतीत होती हैं । इन परिस्थितियों में आयोग का यह समाधान हो गया कि भारसाधक चिकित्सा अधिकारी

डा. राज कुमार शर्मा ने औपचारिक रूप से आवेदक की पद भार ग्रहण करने की रिपोर्ट स्वीकार नहीं की और उसे हाजिरी रजिस्टर में हाजिरी दर्ज करना अनुज्ञात नहीं किया । आवेदक ने तारीख 13 मार्च, 2013 को अभिलेख विरचित करने के संबंध में मीनापुर स्वास्थ्य केन्द्र के 47 कर्मचारियों द्वारा हस्ताक्षरित ज्ञापन की प्रति अभिलेख पर पेश की है जिसमें ओम प्रकाश सिन्हा को इस अवधि के दौरान अनुपस्थित दिखाया गया है । प्रयोग विफल रहा और कर्मचारियों द्वारा विरोध किए जाने पर तैयार किया गया अभिलेख स्वयं राज कुमार शर्मा ने अभिकथित रूप से नष्ट कर दिया । यह उल्लेख करना सुसंगत है कि अगस्त 2012 के मास में तथ्यत: 8 अगस्त, 2012 से अर्थात् ओम प्रकाश सिन्हा के आने पर तारीख 21 दिसंबर, 2012 तक उपस्थिति रजिस्टर सम्यक् रूप से हस्ताक्षरित दिखाया गया है जब उसे अतिरिक्त प्राथमिक स्वास्थ्य घोसाल्ट केन्द्र पर पद ग्रहण करने के लिए निर्मुक्त किया गया । आश्चर्यजनक रूप से उसे जुलाई 2012 के सम्पूर्ण मास में अनुपस्थित दिखाया गया है जबकि वह मोतीपुर प्राथमिक स्वास्थ्य केन्द्र पर प्रतिनियुक्ति पर नियुक्त था जैसाकि ऊपर उल्लेख किया गया है ।

(बल देने के लिए रेखांकित किया गया ।)

अभिलेख (हाजिरी रजिस्टर) प्रक्षेपांश का साक्ष्य है जो सरकारी अभिलेख में कूरचना के बराबर है और बलपूर्वक यह सुझाव दिया गया है कि ऐसा कतिपय परोक्ष हेतु के साथ किया गया है । यहां यह उल्लेखनीय है कि आयोग के समक्ष परिवाद तारीख 2 मार्च, 2012 को फाइल किया गया था और तारीख 23 मार्च, 2012 के आदेश द्वारा स्वास्थ्य विभाग से रिपोर्ट मांगी गई थी और यह जानने के पश्चात् कि इस आयोग द्वारा हस्तक्षेप करते हुए रिपोर्ट मांगी गई है, डा. राज कुमार शर्मा द्वारा अभिलेख में प्रक्षेपांश किया गया था । यह प्रक्षेपांश न केवल डा. राज कुमार शर्मा के कथन को झुठलाता है अपितु ओम प्रकाश सिन्हा के तारीख 23 अक्तूबर, 2011 को अप्राधिकृत रूप से अनुपस्थित होने के संबंध में अपर मुख्य चिकित्सा अधिकारी की रिपोर्ट में किए गए उसके कथन को भी झुठलाता है और इसलिए आवेदक का यह पक्षकथन पूर्ण रूप से साबित होता है कि उसकी पदभार ग्रहण करने की रिपोर्ट को स्वीकार नहीं किया गया था और उसे हाजिरी रजिस्टर में हस्ताक्षर करना अनुज्ञात नहीं

किया गया था । यहां यह उल्लेख करना सुसंगत है कि तारीख 25 अक्तूबर, 2011 और तारीख 21 जून, 2012 के बीच की अवधि के दौरान (जब उसे मोतीपुर स्वास्थ्य केन्द्र पर प्रतिनियुक्त किया गया था) उसने सिविल सर्जन को सात अभ्यावेदन, मुख्य निदेशक, स्वास्थ्य सेवा को तीन अभ्यावेदन और मुख्य सचिव, स्वास्थ्य विभाग को एक अभ्यावेदन भेजा था और इसके अतिरिक्त भारसाधक चिकित्सा अधिकारी, मीनापुर स्वास्थ्य केन्द्र को दिए गए अभ्यावेदनों से यह उपदर्शित होता है कि उसकी पदभार ग्रहण करने की रिपोर्ट स्वीकार नहीं की गई थी और उसे हाजिरी रजिस्टर में हस्ताक्षर करना अनुज्ञात नहीं किया गया था और परिणामस्वरूप उसे वेतन संदत्त नहीं किया गया था ।

वह रीति जिसमें ओम प्रकाश सिन्हा अपनी व्यथा और दुर्दशा को प्राधिकारियों की जानकारी में लाने के लिए उनके पास पहुंचा था, इस तथ्य का प्रथमदृष्ट्या सबूत है कि वह अपनी ड्यूटी से अनुपस्थित नहीं था; इसके अतिरिक्त भारसाधक चिकित्सा अधिकारी द्वारा उसके अभ्यावेदनों पर किसी भी प्रकार की कोई कार्रवाई आरंभ नहीं की गई थी । यदि वस्तुतः वह सामान्य अनुक्रम में अप्राधिकृत रूप से अपनी ड्यूटी से अनुपस्थित रहता तो उसके इस आचरण को उच्चतर प्राधिकारियों की जानकारी में लाया जाना चाहिए था और उसके विरुद्ध समुचित कार्रवाई और सिफ़ारिश की जानी चाहिए थी । तथापि, इस प्रकार का कुछ नहीं हुआ । इन तथ्यों और परिस्थितियों में आयोग ने यह निष्कर्ष निकालने में हिचक नहीं की कि डा. राज कुमार शर्मा का पक्षकथन झूठ का पुलिंदा है और तंग करने के संबंध में आवेदक की शिकायत जो उसने राज कुमार शर्मा के बारे में की है, सुआधारित है ।

तारीख 19 मार्च, 2013 को सुनवाई के दौरान आयोग ने उसके पक्षकथन के बारे में कमियों के संबंध में डा. राज कुमार शर्मा को बताया, तथापि, वह कोई संतोषजनक उत्तर देने में विफल रहा । आयोग का यह मत है कि सरकारी अभिलेखों में प्रक्षेपांशों/कूटरचना सहित उसके कार्यों और लोपों के लिए उसके विरुद्ध विभागीय कार्यवाही आरंभ की जानी चाहिए । आयोग का यह भी मत है कि आवेदक को धनीय प्रतिकर भी दिया जाना चाहिए जो डा. राज कुमार शर्मा द्वारा उसके मानव अधिकारों के अतिक्रमण में वेतन का भुगतान

न करने के संबंध में तंग करने के उसके कार्यों के लिए राज कुमार शर्मा द्वारा दिया जाए । मामले के तथ्यों और परिस्थितियों में 40,000/- रुपए के रूप में प्रतिकर संगणित किया गया है ।

(बल देने के लिए रेखांकित किया गया ।)

13. इस न्यायालय की सुविचारित राय में अधिकरण द्वारा मूल अभिलेखों के परिशीलन के आधार पर निकाला गया तथ्य का ऐसा महत्वपूर्ण निष्कर्ष और सिविल सर्जन तथा उप निदेशक स्वास्थ्य सेवा की ओर से की गई स्वीकारोक्ति को दृष्टिगत करते हुए विशेषतया याची के स्वयं के कथन के आधार पर इस न्यायालय द्वारा उचित रूप से हस्तक्षेप नहीं किया जा सकता । आयोग ने इस पहलू पर विचार किया है कि याची ने न केवल हाजिरी रजिस्टर में प्रत्यर्थी सं. 11 के नाम के संबंध में प्रक्षेपांश किया अपितु प्रत्यर्थी सं. 11 को कार्य न करने देने और उसका वेतन न देने के लिए अपनी कार्रवाई को न्यायोचित ठहराने के लिए अभिलेख भी तैयार किया ।

14. जहां तक याची के विद्वान् काउंसेल श्री ईश्वार की इस दलील का संबंध है कि डा. सुधीर कुमार सिन्हा प्राथमिक स्वास्थ्य केन्द्र, मीनापुर का भारसाधक चिकित्सा अधिकारी था, याची ने आयोग के समक्ष अपने लिखित कथन में इस अभिवाक् को नहीं उठाया था । अतः आयोग ने अभिलेख पर की सामग्री के आधार पर विशेषतया हाजिरी रजिस्टर के आधार पर सम्पूर्ण मामले को विनिश्चित करने में कोई त्रुटि नहीं की है, जैसाकि ऊपर उल्लेख किया गया है कि प्रत्येक मास में प्रक्षेपांश पाया गया था ।

15. याची के विद्वान् काउंसेल ने सिविल सर्जन की तारीख 22 फरवरी, 2013 की रिपोर्ट का जो आयोग द्वारा प्रत्यर्थी सं. 11 की पत्नी की शिकायत का संज्ञान लेने के पश्चात् अस्तित्व में आई थी, ग़लत रूप से अवलंब लिया है क्योंकि उस सिविल सर्जन ने जिसने मुख्य निदेशक को यह दावा करते हुए रिपोर्ट प्रस्तुत की थी कि प्रत्यर्थी सं. 11 ड्यूटी पर उपस्थित नहीं था, तथापि, आयोग के समक्ष वैयक्तिक सुनवाई के दौरान उसने यह स्वीकार किया था कि याची के कहने पर हाजिरी रजिस्टर में प्रक्षेपांश (अन्तर्वेशन) किया गया था । अतः यह न्यायालय उस साक्ष्य का पुनर्मूल्यांकन नहीं कर सकता जिसका आयोग द्वारा गहराई से परिशीलन और परीक्षा की गई है ।

16. यह तथ्य कि याची जनवरी, 2012 के प्रथम सप्ताह में उस सिविल सर्जन की उपस्थिति में प्रत्यर्थी सं. 11 के साथ अभिकथित दुर्व्यवहार के संबंध में आयोग के समक्ष अपनी प्रतिरक्षा को साबित नहीं कर सका, जिसकी उसने अभिकथित रूप से दूरभाष पर घटना के बारे में सूचना दी थी, स्वतः ही याची के पक्षकथन को पूर्ण रूप से ध्वस्त कर देता है । यदि प्रत्यर्थी सं. 11 ने उसके साथ दुर्व्यवहार किया था तो उसे कोई भी दांडिक मामला दर्ज कराने से नहीं रोक सकता था या कम से कम वह जनवरी, 2012 के मास में रिपोर्ट कर सकता था । यह उल्लेखनीय है कि आयोग के समक्ष प्रत्यर्थी सं. 11 की शिकायत तारीख 2 मार्च, 2012 को फाइल की गई थी और इसलिए याची द्वारा तारीख 2 मार्च, 2012 के पश्चात् अवलंब लिए जाने वाले किसी दस्तावेज को पूर्ण सतर्कता और सावधानी के साथ पढ़ा जाना चाहिए क्योंकि ये दस्तावेज गढ़े हुए पाए गए हैं जैसाकि आयोग द्वारा मत व्यक्त किया गया है ।

17. अतः श्री ईश्वार की दलीलों पर गहराई से विचार करने तथा अभिलेख पर की सामग्री का परिशीलन करने के पश्चात् इस न्यायालय को आयोग के प्रत्यर्थी सं. 11 को परेशान किए जाने के लिए प्रतिकर के रूप में 40,000/- रुपए का संदाय करने के आदेश में तथा इस आदेश में कि राज्य सरकार याची के विरुद्ध सभी महत्वपूर्ण हाजिरी रजिस्टरों सहित दस्तावेजों में प्रक्षेपांश करने और उन्हें गढ़कर अवचार करने के लिए याची के विरुद्ध विभागीय कार्यवाही आरंभ करने का निदेश देने में कोई त्रुटि प्रतीत नहीं होती जैसाकि याची द्वारा किया गया है ।

18. तथ्यों का विश्लेषण करने के पश्चात् इस न्यायालय का इस बाबत पूर्ण समाधान हो गया है कि आयोग के प्रक्रियात्मक विनिश्चय में कोई त्रुटि नहीं है । अतः इस न्यायालय के लिए आयोग द्वारा निकाले गए निष्कर्षों में हस्तक्षेप करना कठिन प्रतीत होता है ।

19. न्यायिक पुनर्विलोकन किसी विनिश्चय के विरुद्ध अपील नहीं है अपितु वह इस रीति का पुनर्विलोकन है जिसमें न्यायालय ने न्यायिक पुनर्विलोकन की शक्ति के प्रयोग में विनिश्चय किया है जिसमें इस तथ्य के प्रति सतर्क रहना चाहिए कि यदि विनिश्चय विधि द्वारा स्थापित सिद्धांतों और नैसर्गिक न्याय के नियमों का अनुसरण करने के पश्चात् प्रशासनिक रूप से लिया गया है और व्यक्ति को अपने विरुद्ध मामले के समाधान के लिए ऋजु उपचार प्राप्त हुआ है तो न्यायालय ऐसे मामले में प्रशासनिक प्राधिकारी के निर्णय के ऊपर अपना निर्णय प्रतिस्थापित नहीं कर सकता

जहां ऐसा निर्णय उस प्राधिकारी द्वारा अपनी अधिकारिता के क्षेत्र के भीतर उचित रूप से दिया गया है ।

20. यह भी सुस्थापित सिद्धांत है कि यद्यपि प्रशासनिक कार्रवाई का न्यायिक पुनर्विलोकन लचीला होना चाहिए और इसके आयाम को बंद नहीं किया जाना चाहिए, तथापि, न्यायालय न्यायिक पुनर्विलोकन की शक्ति के प्रयोग में ऐसे निष्कर्षों की विधिमान्यता पर विचार नहीं कर सकता जो युक्तियुक्त रूप से साक्ष्य द्वारा समर्थित हों और ऐसी कार्यवाहियों द्वारा निकाले गए हों जिसमें ऐसी प्रक्रियात्मक अवैधता या अनियमितताओं का दोष नहीं निकाला जा सकता, जो प्रक्रिया को दूषित करती हों और जिसके द्वारा न्यायिक पुनर्विलोकन का विनिश्चय किया गया हो और यह बात ध्यान में रखी जानी चाहिए कि यह विनिश्चय के विरुद्ध न हो अपितु विनिश्चय करने वाली प्रक्रिया की परीक्षा तक निर्बंधित हो । लार्ड हालटम ने **चीफ कांस्टेबल आफ दि नार्थ वेल्स पुलिस** बनाम **इवान्स**[1] वाले मामले में इस प्रकार मत व्यक्त किया गया है :–

> "न्यायिक पुनर्विलोकन का प्रयोजन यह सुनिश्चित करना है कि व्यक्ति को ऋजु उपचार प्राप्त हो न कि यह सुनिश्चित करना कि प्राधिकारी ऋजु उपचार प्राप्त करने के पश्चात् मामले में ऐसे विनिश्चय पर पहुंचा है जो उसे इस संबंध में विधि द्वारा विनिश्चय करने के लिए प्राधिकृत करता है और ऐसा निष्कर्ष निकाला है जो न्यायालय की दृष्टि में सही है ।"

21. यहां उच्चतम न्यायालय द्वारा **भारत संघ** बनाम **सरदार बहादुर**[2] वाले मामले में अभिव्यक्त निम्नलिखित मत का उल्लेख करना उपयोगी होगा :–

> "जहां ऐसी कतिपय सुसंगत सामग्री मौजूद है जिसे प्राधिकारी ने स्वीकार किया है और जो सामग्री युक्तियुक्त रूप से इस निष्कर्ष का समर्थन करती है कि अधिकारी दोषी है वहां उच्च न्यायालय का यह कार्य नहीं है कि वह सामग्री के पुनर्विलोकन के लिए और सामग्री के आधार पर अपने स्वतंत्र निष्कर्ष निकालने के लिए अनुच्छेद 226 के अधीन अपनी अधिकारिता का प्रयोग करे ।

---

[1] (1982) 3 आल. ई. आर. 141.

[2] (1972) 4 एस. सी. सी. 618.

यदि जांच समुचित रीति में की गई है तो साक्ष्य की विश्वसनीयता की पर्याप्तता का प्रश्न उच्च न्यायालय के समक्ष नहीं उठाया जा सकता ।''

22. अतः आयोग द्वारा पारित आदेश के विरुद्ध न्यायिक पुनर्विलोकन के अत्यंत परिसीमित क्षेत्र को दृष्टिगत करते हुए यह न्यायालय उपर्युक्त चर्चा के आधार पर आक्षेपित आदेश में जो विधि के नियमों को मानने वाले लोगों का पूर्ण विश्वास स्थापित करता हो और बुराई के विरुद्ध लड़ने के लिए धनवान और निर्धन दोनों में आशा उत्पन्न करने वाला हो, हस्तक्षेप करना उचित नहीं समझता ।

23. तथापि, इस मामले को निपटाने से पूर्व यह न्यायालय यह स्पष्ट करना चाहता है कि यद्यपि याची आज से एक मास की अवधि के भीतर प्रत्यर्थी सं. 11 को 40,000/- रुपए की धनराशि का संदाय करने के लिए जिम्मेदार होगा, तथापि, आयोग के आक्षेपित आदेश में ऐसा कुछ नहीं कहा गया है अथवा इस आदेश में भी ऐसा कुछ नहीं कहा जा रहा है, जो विभागीय प्राधिकारियों को याची के विरुद्ध विभागीय कार्यवाहियां करने और निपटाने से निवारित करे । ऐसी कार्यवाही स्वयं अपने गुण-दोष के आधार पर विनिश्चित की जानी चाहिए । तथापि, ऐसी विभागीय कार्यवाहियां इस आदेश की प्राप्ति की तारीख से 6 मास की अवधि के भीतर आरंभ करके निपटाई जाएंगी ।

24. इसे दृष्टिगत करते हुए यह आवेदन पूर्णतया भ्रमित करने वाला है और तद्नुसार इसे खारिज किया जाता है ।

25. इस आदेश की एक प्रति मुख्य सचिव, स्वास्थ्य विभाग को इसके अनुपालन के लिए भेजी जाए ।

याचिका खारिज की गई ।

मह.

लक्ष्मी लाल माहेश्वरी

बनाम

राज्य और अन्य

तारीख 26 फरवरी, 2014

न्यायमूर्ति (डा.) विनीत कोठारी

संविधान, 1950 – अनुच्छेद 226 – सरकारी कर्मचारी द्वारा कदाचार करने और अनियमितताएं बरतने के आधार पर अनिवार्य सेवानिवृत्ति – कर्मचारी के विरुद्ध विभागीय कार्यवाही के साथ दंड न्यायालय में कार्यवाही – दंड न्यायालय में कर्मचारी की सम्मानपूर्वक दोषमुक्ति – विभागीय कार्यवाहियों में और अपील प्राधिकारी द्वारा दंड न्यायालय का दोषमुक्ति का आदेश विचार में न लिया जाना – विभागीय जांच और दंड न्यायालय के समक्ष कार्यवाहियां एक साथ चल सकती हैं – अपील प्राधिकारी द्वारा विवेक का प्रयोग न किए जाने के आधार पर अनिवार्य सेवानिवृत्ति का आदेश अभिखंडित किए जाने योग्य है ।

याची ने अपनी अनिवार्य सेवानिवृत्ति के विरुद्ध संविधान, 1950 के अनुच्छेद 226 के अधीन रिट याचिका फाइल की थी । याचिका के लंबन के दौरान याची की मृत्यु हो गई तथापि, उसके विधिक प्रतिनिधियों ने पक्षकार बनकर याचिका में पैरवी की । न्यायालय द्वारा रिट याचिका मंजूर करते हुए,

अभिनिर्धारित – दोषमुक्ति आदेश तारीख 17 अप्रैल, 1996 को सुनाया गया है, इसलिए इसे अनुशासनिक अधिकारी के समक्ष प्रस्तुत करने का कोई प्रश्न नहीं था, जिसने तारीख 9 मई, 1984 को अर्थात् इसके काफी पहले अनिवार्य सेवानिवृत्ति का आदेश पारित कर किया था, तथापि, अपील प्राधिकारी निश्चित रूप से इससे अवगत था और उक्त दोषमुक्ति आदेश उसके अभिलेख पर था किन्तु इसके बावजूद अपीली प्राधिकारी ने ब्यौरे पर विचार किए बिना याची के विरुद्ध दोनों प्रकार की कार्यवाहियों में अपेक्षित सबूत के मानक की विधिक भिन्नता पर निष्कर्ष दिया और मात्र जांच अधिकारी के निष्कर्षों का अवलंब लिया और सरसरी तौर पर तारीख 9 मई, 1984 को अनिवार्य सेवानिवृत्ति के आदेश को सही ठहराया और इस

प्रकार न्याय की हानि हुई । यद्यपि याची के विरुद्ध उपरोक्त उल्लिखित आरोप और अभिकथन द्वारा कूट रचना करने का प्रत्यक्ष आरोप नहीं है तथापि, ये अप्रत्यक्ष रूप से उसी घटना से संबंधित हैं और आरोप वरिष्ठ प्राधिकारी के अनुदेशों पर प्रत्यर्थी कार्यालय के मामूली खर्चों के संदाय के लिए 505.85 रुपए के लिए उक्त एफ.वी.सी. बिल सं. 73 के डुप्लीकेट बिल बनाने जैसी मामूली अनियमितताएं स्पष्ट रूप से प्रकट होती हैं और अधिकारी को मामले की तुरन्त रिपोर्ट न करने से संबंधित हैं । यदि यह उपधारित कर लिया जाए कि आरोप याची के विरुद्ध एक-पक्षीय जांच में साबित होते हैं तो भी उसकी सेवा के मध्य में उसके ऊपर अधिरोपित अनिवार्य सेवानिवृत्ति का दण्ड पूर्ण रूप से अन्यायोचित और अनावश्यक था । यह केवल एक पुराने कर्मचारी की अनिवार्य सेवानिवृत्ति पर बेदाग़ या निष्कलंक सेवानिवृत्ति नहीं थी अपितु यह दण्ड आदेश था और जिस पर अपील प्राधिकारी दोषमुक्ति आदेश के परिप्रेक्ष्य में संपूर्ण मामले पर पुनः विचार करने के लिए आबद्ध था । अनिवार्य सेवानिवृत्ति की उपधारणा सुस्थापित है और यदि विभाग के सक्षम प्राधिकारी की यह राय है कि अभिलेख पर उपलब्ध सामग्री के आधार पर, प्रश्नगत सरकारी सेवक एक बोझ है और निष्क्रिय है जो सेवा से हटाने योग्य है तो सेवक द्वारा अर्हक सेवा पूरी करने के पश्चात् ऐसे कर्मचारी को हटाया जा सकता है । किन्तु, यहां एक ऐसा मामला है जहां याची का उसी घटना पर आधारित अपराधों के लिए विचारण किया गया था जिसके लिए उसपर आरोप पत्र की तामील की गई थी और दाण्डिक विचारण भी किया गया था और इसलिए प्रत्यर्थियों को ऋजुतापूर्वक दाण्डिक विचारण के लिए इंतजार करना चाहिए था और ठोस आधारों पर दोषमुक्ति को दृष्टिगत करते हुए याची को विभागीय जांच में भी दोषमुक्त किया जा सकता था किन्तु ऐसा नहीं हुआ, अतः अपीली प्राधिकारी दोषमुक्ति के आदेश में दिए गए कारणों पर अपने विवेक का प्रयोग करते हुए और मामूली अनियमितताओं और उपेक्षाओं के आरोपों पर जो याची द्वारा की जानी अभिकथित की गई थीं, आधारित अनिवार्य सेवानिवृत्ति के आदेश को अपास्त करना चाहिए था क्योंकि उसके विरुद्ध विभाग द्वारा जालसाजी और कपट के अभिकथनों के आरोप विरचित नहीं किए गए थे और याची के विरुद्ध ऐसा कोई साक्ष्य नहीं है कि उसने ऐसी जालसाजी करके उक्त एफ.वी.सी. बिल के लिए 9,000/- रुपए की अधिक राशि निकालने को सरल बनाया था । उच्चतर प्राधिकारी को अपील के द्वारा किसी प्रभावी उपचार के लिए उपबंधित

प्रयोजन वर्तमान मामले में स्पष्ट रूप से विफल प्रतीत होता है जहां विवेक का प्रयोग न किया गया हो । अलग-अलग क्षेत्रों में दोनों कार्यवाहियों को करने का यह अर्थ नहीं होता है कि एक कार्यवाही के निष्कर्ष को अन्य कार्यवाहियों में विचार में न लिया जाए और एक कार्यवाही के प्रभाव पर दूसरे में विचार नहीं किया जा सकता । यद्यपि दोनों कार्यवाहियों को जो एक साथ चली हैं पानी के समान पृथक् नहीं किया जा सकता तथापि, प्राधिकारियों से जो अनुशासनात्मक कार्यवाहियां आरंभ करते हैं, तथ्य और प्रास्थितियों पर और वास्तविकताओं पर विवेक का प्रयोग करना अपेक्षित है और वे दाण्डिक विचारण में सक्षम न्यायालय के निष्कर्षों की पूर्ण रूप से उपेक्षा नहीं कर सकता जब वे उन्हीं तथ्यों और सामग्री के आधार पर सरकारी सेवक के विरुद्ध अनुशासनात्मक कार्यवाहियों पर विचार करते हों । इस न्यायालय का यह निष्कर्ष है कि वर्तमान मामला दंड न्यायालय के विस्तृत निर्णय के लिए अपील प्राधिकारी द्वारा आंख मूंद लेने का स्पष्ट उदाहरण है जो निर्णय उसके समक्ष निश्चित रूप से पेश किया गया था और ये दलीलें भी दी गई थीं कि उसके आधार पर आक्षेपित आदेश द्वारा दिया गया अनिवार्य सेवानिवृत्ति का दण्ड अभिखंडित किए जाने योग्य है । अन्यथा परिणाम यह होगा कि यद्यपि याची को अनेक साक्षियों की परीक्षा के पश्चात् उल्लिखित विस्तृत निर्णय द्वारा दंड न्यायालय द्वारा सम्मानपूर्वक और पूर्ण रूप से दोषमुक्त ठहराए जाने पर भी बिना कारण के सेवा से हटाए जाने का दंड भोगना होगा, ऐसा विधि में अनुज्ञेय नहीं है । (पैरा 14, 15, 16, 18 और 19)

निर्दिष्ट निर्णय

		पैरा
[2008]	(2008) 8 एस. सी. सी. 236 : **उत्तरांचल राज्य और अन्य** बनाम **खड़क सिंह;**	6,20
[2008]	(2008) 1 एस. सी. सी. 650 : **इंडियन ओवरसीज बैंक, अन्ना सलाई और अन्य** बनाम **पी. गणेशन और अन्य;**	21
[2006]	(2006) 5 एस. सी. सी. 446 : **जी. एम. टेंक** बनाम **गुजरात राज्य और अन्य;**	6,20

[2006] (2006) 5 एस. सी. सी. 88 :
एम. वी. बिजलानी बनाम **भारत संघ और अन्य;** 6,20

[2004] (2004) 6 एस. सी. सी. 482 :
इलाहाबाद जिला को-ऑपरेटिव बैंक लि., इलाहाबाद
बनाम **विद्या वारिध मिश्रा;** 21

[2002] (2002) डब्ल्यू. एल. सी. (3) 62 :
अर्जुन सिंह पटेल बनाम **राजस्थान राज्य और अन्य;** 21

[2001] (2001) 1 एस. सी. सी. 65 :
भारत संघ बनाम **के. ए. किट्टू और एक अन्य;** 6

[1999] (1999) 3 एस. सी. सी. 679 = ए. आई. आर.
1999 एस. सी. 1416 :
कैप्टन एम. पॉल एंथनी बनाम **भारत गोल्ड**
माइन्स लि. और एक अन्य; 6,20,21

[1998] (1998) 6 एस. सी. सी. 651 :
उत्तर प्रदेश राज्य बनाम **शत्रुघन लाल और अन्य;** 6

[1982] (1982) आर. एल. आर. 635 :
बी. एस. सिंघवी बनाम **यूनाइटेड कॉमर्शियल बैंक**
और एक अन्य । 21

आरंभिक (सिविल) रिट अधिकारिता : एस. बी. सिविल रिट याचिका सं. 495/98.

संविधान, 1950 के अनुच्छेद 226 के अधीन सिविल रिट याचिका ।

याची की ओर से सर्वश्री मनोज भंडारी और हिमांशु माहेश्वरी

प्रत्यर्थियों की ओर से सर्वश्री एम. आर. सिंघवी और भावित शर्मा

न्यायमूर्ति (डा.) विनीत कोठारी – 1998 की वर्तमान पुरानी रिट याचिका लक्ष्मी लाल माहेश्वरी द्वारा फाइल की गई थी, जिसकी इस मामले की सफलता देखे बिना न्यायालय की निर्णय सूची में काफी लम्बे समय की अवधि के दौरान तारीख 8 अप्रैल, 2013 को मृत्यु हो गई है ।

2. याची ने यह याचिका तारीख 9 मई, 1984 को अपनी अनिवार्य सेवानिवृत्ति आदेश के विरुद्ध फाइल की थी, जिसकी तारीख 1 जुलाई, 1997 को अपीली प्राधिकारी ने पुष्टि कर दी थी और इन दोनों आदेशों से व्यथित होकर, याची ने रिट याचिका के साथ 110 पृष्ठों में विस्तारित उपाबंध दस्तावेजों के साथ 345 पृष्ठों की वर्तमान रिट याचिका फाइल की है । प्रत्यर्थी विभाग द्वारा उत्तर फाइल किया गया था और विद्वान् काउंसेलों की विस्तृत दलीलों के पश्चात् दलीलों का निष्कर्ष निकालने पर न्यायालय में संक्षिप्त लिखित दलीलें प्रस्तुत की गई हैं और इस प्रकार इस न्यायालय द्वारा इस आदेश द्वारा याचिका का निपटारा किया जा रहा है ।

3. मामले से संबंधित संक्षिप्त तथ्य इस प्रकार हैं कि याची को कमांडर कार्यालय, एन.सी.सी. ग्रुप मुख्यालय, उदयपुर में तारीख 5 जनवरी, 1963 को अवर श्रेणी लिपिक के रूप में नियुक्त किया गया था और उसे तारीख 10 मई, 1978 को उच्च श्रेणी लिपिक के पद पर प्रोन्नत किया गया था । वह घटना जिसके लिए याची को दाण्डिक विचारण और अनुशासनात्मक कार्यवाहियों का सामना करना पड़ा, फरवरी, 1978 के मास की है जब वह उच्च श्रेणी लिपिक के रूप में कार्य कर रहा था और उसे प्रत्यर्थियों के कार्यालय में रोकड़िया का अतिरिक्त प्रभार दिया गया था । याची ने प्रत्यर्थी विभाग के छोटे-मोटे संदायों, यथा पानी और बिजली के बिलों इत्यादि के लिए 505.85 रुपए की राशि एफ.वी.सी. (संपूर्ण रूप से वाउचर आकस्मिक) बिल सं. 73 द्वारा आहरित की थी और अभिकथित जालसाजी के कारण, 9,505.85 रुपए की राशि का उक्त बिल राज्य कोषागार से भुनाया गया था और उसमें चार स्थानों पर उक्त बिल में बाईं तरफ पर 9 का अंक जुड़ा था और इसे धोखेबाजी और जालसाजी के कारण याची ने दाण्डिक मामला सं. 42/89 - राज्य बनाम लक्ष्मी लाल में दाण्डिक विचारण का सामना किया जिसमें अतिरिक्त मुख्य न्यायिक मजिस्ट्रेट सं. 3 उदयपुर ने तारीख 17 अप्रैल, 1996 के आदेश द्वारा याची को भारतीय दण्ड संहिता की धारा 420 और 468 के अधीन विचारण करते हुए पूर्णतः दोषमुक्त किया । उक्त आदेश की एक प्रति उपाबंध-36 के रूप में अभिलेख पर पेश की गई है । उक्त आदेश के ब्यौरे का बाद में उल्लेख किया जाएगा । तथापि, पूर्वोक्त दाण्डिक विचारण के बावजूद जयपुर स्थित प्रत्यर्थी एन.सी.सी. राजस्थान निदेशालय ने तारीख 21 मई 1979 के आरोप पत्र द्वारा याची के विरुद्ध पृथक् रूप से अनुशासनात्मक कार्यवाही आरंभ की ।

4. ऐसा प्रतीत होता है कि उक्त जांच में, याची अपने विरुद्ध उन्हीं तथ्यों और सामग्री के आधार पर दाण्डिक विचारण का सामना करने के कारण उपस्थित नहीं हुआ और इसलिए उसके विरुद्ध एक-पक्षीय जांच रिपोर्ट प्रस्तुत की गई और उसके आधार पर उसे तारीख 9 मई, 1984 के आदेश द्वारा अनिवार्य रूप से सेवानिवृत्त कर दिया गया । उक्त आदेश के विरुद्ध याची द्वारा फाइल अपील में भी उसे कोई लाभ नहीं मिल सका, यद्यपि उस समय तक उसे तारीख 17 अप्रैल, 1996 के आदेश द्वारा दोषमुक्त कर दिया गया था किन्तु तारीख 1 जुलाई, 1997 को राजस्थान सरकार के शिक्षा विभाग के संबंधित विशेष सचिव द्वारा अपील खारिज कर दी गई थी । इन दोनों आक्षेपित आदेशों की प्रतियां उपाबंध-17 और 43 के रूप में अभिलेख पर पेश की गई हैं । याची द्वारा वर्तमान रिट याचिका तारीख 10 फरवरी, 1998 को इस न्यायालय में फाइल की गई थी और तारीख 21 अप्रैल, 1998 को कारण बताओ नोटिस जारी करने के पश्चात् और तारीख 11 नवम्बर, 2005 को दोनों पक्षकारों की सुनवाई के पश्चात् ग्रहण की गई थी और शीघ्र सुनवाई का आदेश दिया गया था किन्तु उक्त मामले की सुनवाई किसी न किसी कारण से स्थगित कर दी गई और इसी बीच में तारीख 8 अप्रैल, 2013 को याची की मृत्यु हो गई और तत्पश्चात् तारीख 4 सितम्बर, 2013 को उसके विधिक प्रतिनिधियों को अभिलेख पर पक्षकार बनाया गया और इस न्यायालय द्वारा तारीख 18 फरवरी, 2014 को मामले में लम्बी सुनवाई की गई ।

5. याची के विद्वान् काउंसेल श्री मनोज भंडारी ने यह दलील दी है कि याची के विरुद्ध विरचित आरोप दाण्डिक विचारण में उसके विरुद्ध अभिकथित मामले के आधार पर थे और चूंकि आरोप पत्र में याची के विरुद्ध किसी गबन की बात नहीं कही गई है और यहां तक कि कोषागार से एफ.वी.सी. बिल सं. 73 में 9,000/- रुपए की अधिक धनराशि निकालने के बारे में नहीं कहा गया है, इसलिए याची, जिसने 20 वर्ष की बेदाग सेवा की थी, सेवा से अचानक और अनिवार्य रूप से सेवानिवृत्त कर दिया गया यद्यपि बाद में सक्षम न्यायालय ने उसे उक्त आरोपों से पूर्णरूप से और आदरपूर्वक दोषमुक्त कर दिया क्योंकि उक्त जालसाजी करने में याची की वास्तविक भूमिका नहीं थी जो राज्य कोषागार के कार्यालय में हुआ था और यह बात उक्त न्यायालय द्वारा परीक्षा किए गए अभियोजन साक्षियों की परीक्षा से स्पष्ट है । उन्होंने यह दलील दी है कि याची के विरुद्ध विरचित किए गए आरोप स्पष्ट रूप से यह दर्शाते हैं कि विरचित

किए गए आरोप 505.85 रुपए की धनराशि के लिए दोहरा बिल बनाने की छोटी सी अनियमितता के बारे में थे, जो उसके वरिष्ठ के निदेश पर कार्यालय में मामूली संदाय के लिए किया गया था, उक्त डुप्लीकेट बिल लाल स्याही में "डुप्लीकेट" शब्द लिखे बिना केवल उच्च प्राधिकारी के निदेश पर 505.85 रुपए के लिए मार्च के माह में पुनः जारी किया गया था और इस प्रकार, सभी ऐसी अनियमितताओं यद्यपि वे एक कही जा सकती हैं, के लिए याची की अनिवार्य सेवानिवृत्ति का दण्ड कठोर और पूर्णरूप से असंगत है और उक्त अनिवार्य सेवानिवृत्ति आदेश के विरुद्ध उसकी अपील संपूर्ण रूप से बिना कारण के अपील प्राधिकारी द्वारा सरसरी तौर पर खारिज कर दी गई और सक्षम न्यायालय द्वारा उसके दोषमुक्ति आदेश को विचार में नहीं लिया गया और इसलिए ये दोनों आक्षेपित आदेश अभिखंडित किए जाने योग्य हैं ।

6. श्री मनोज भंडारी ने अपनी दलीलों के समर्थन में अनेक विधिक मामलों का अवलंब लिया है, जो नीचे दिए गए हैं और जिन पर बाद में चर्चा की जाएगी :–

(i) **कैप्टन एम. पॉल एंथनी** बनाम **भारत गोल्ड माइन्स लि. और एक अन्य**[1]

(ii) **भारत संघ** बनाम **के. ए. किट्टू और एक अन्य**[2]

(iii) **उत्तर प्रदेश राज्य** बनाम **शत्रुघन लाल और अन्य**[3]

(iv) **एम. वी. बिजलानी** बनाम **भारत संघ और अन्य**[4]

(v) **जी. एम. टेंक** बनाम **गुजरात राज्य और अन्य**[5]

(vi) **उत्तरांचल राज्य और अन्य** बनाम **खड़क सिंह**[6] ।

7. दूसरी ओर प्रत्यर्थियों की ओर से उपस्थित ज्येष्ठ अधिवक्ता श्री एम. आर. सिंघवी ने जिनके साथ श्री भावित शर्मा हैं, रिट याचिका का

---

[1] (1999) 3 एस. सी. सी. 679 = ए. आई. आर. 1999 एस. सी. 1416.
[2] (2001) 1 एस. सी. सी. 65.
[3] (1998) 6 एस. सी. सी. 651.
[4] (2006) 5 एस. सी. सी. 88.
[5] (2006) 5 एस. सी. सी. 446.
[6] (2008) 8 एस. सी. सी. 236.

प्रबलता से विरोध करते हुए आक्षेपित आदेशों का समर्थन किया और भारत के संविधान के अनुच्छेद 226 के अधीन इस न्यायालय की परिसीमित अधिकारिता की दलील देते हुए अपील न्यायालय के रूप में कार्य न करने का अनुरोध किया । उन्होंने यह भी दलील दी कि दाण्डिक न्यायालय द्वारा याची की दोषमुक्ति पारिणामिक नहीं है क्योंकि उक्त दोषमुक्ति आदेश अनुशासनिक प्राधिकारी के समक्ष नहीं रखा गया है और चूंकि अनुशासनिक कार्रवाई और दाण्डिक विचारण दो पृथक्-पृथक् बातें हैं और दोनों को एक साथ चलाया जा सकता है, इसलिए याची का यह कार्य है कि वह स्वयं के पक्ष में अनुशासनिक कार्यवाहियों में समुचित प्रतिरक्षा करे किन्तु ऐसा नहीं हुआ और उसके विरुद्ध एकपक्षीय कार्यवाहियां की गई हैं, इसलिए याची इस प्रक्रम पर नैसर्गिक न्याय के सिद्धांतों के भंग की शिकायत नहीं कर सकता ।

8. श्री एम. आर. सिंघवी ने पूर्वोक्त प्रतिपादना के लिए निर्णयों का अवलंब लेते हुए यह भी दलील दी है कि आरोप सं. 3 उक्त एफ.वी.सी. बिल सं. 73 की कपटपूर्वक निकासी को साध्य बनाने के लिए अभियोग में शामिल था और परिणामस्वरूप उसपर अधिरोपित अनिवार्य सेवानिवृत्ति का दण्ड न्यायोचित है और इसलिए इस न्यायालय द्वारा इसकी पुष्टि की जानी चाहिए ।

9. मैंने विद्वान् काउंसेलों को विस्तार से सुना और अभिलेख तथा वकीलों द्वारा निर्दिष्ट निर्णयों का परिशीलन किया ।

10. प्रत्यर्थियों की ओर से विद्वान् काउंसेल श्री एम. आर. सिंघवी, ज्येष्ठ अधिवक्ता द्वारा बहस की गई इस विधिक प्रतिपादना पर कोई विवाद नहीं है कि अनुशासनिक कार्यवाहियां और दाण्डिक विचारण एक साथ चल सकते हैं क्योंकि दोनों के क्षेत्र और व्याप्ति भिन्न हैं तथा वे मानदंड भी भिन्न हैं जिनके आधार पर सरकारी कर्मचारी पर आरोप या दोषमुक्ति भिन्न हैं और इसलिए दोनों कार्यवाहियां का एक साथ चलाने का प्रयोजन भी अनुज्ञेय हो सकता है । किन्तु वर्तमान मामले में वास्तविकता यह है कि याची जो प्रत्यर्थी-कार्यालय में उच्च श्रेणी लिपिक के रूप में कार्य कर रहा है, स्पष्ट रूप से दाण्डिक न्यायालय द्वारा दोषी नहीं पाया गया है और ऐसा करते हुए सक्षम न्यायालय ने यह पाया कि याची द्वारा अपने वरिष्ठ प्राधिकारी के अधीन तैयार किया गया एफ.वी.सी. बिल सं. 73 केवल 505.85 रुपए की धनराशि के लिए राज्य कोषागार को भेजा गया था,

जबकि प्रविष्टि होने के बाद और कोषागार कार्यालय में 9,505.85 रुपए के लिए पास होने के पश्चात् उक्त अनुमोदित बिल प्रत्यर्थी-कार्यालय के चपरासी श्री मान सिंह के साथ वापस भेजा गया था, जिसने वर्तमान याची को अनुमोदित बिल सौंप दिया किन्तु बैंक कर्मचारियों ने जिसकी न्यायालय द्वारा परीक्षा की गई थी और जिसने उक्त अनुमोदित बिल का संदाय किया था, यह कथन किया है कि संदाय राजेन्द्र कुमार शर्मा नामक व्यक्ति को दिया गया था न कि वर्तमान याची-लक्ष्मी लाल माहेश्वरी को, और इसलिए प्रत्यक्षतया और प्रथमदृष्ट्या इससे यह प्रतीत होता है कि याची न तो इसमें शामिल था और न ही उसने उक्त बिल अर्थात् एफ.वी.सी. बिल सं. 73 में 505.85 रुपए के गणितीय अंक में 9 अंक जोड़ने में कोई कपट किया था और न ही उसने बैंक से उक्त अधिक राशि निकाली थी और इसलिए न ही उसने उक्त जालसाजी से विधिविरुद्ध रूप से कुछ प्राप्त किया और इसलिए सक्षम दाण्डिक न्यायालय ने सभी सुसंगत साक्षियों की परीक्षा करने के पश्चात् याची को पूर्ण रूप से दोषमुक्त कर दिया, जो निर्णय अंतिम बन गया माना जा सकता है ।

11. इस तथ्य के साथ, याची के विद्वान् काउंसेल ने यह दलील दी है कि याची के विरुद्ध एकपक्षीय जांच किए जाने के समय अनुशासनिक प्राधिकारी द्वारा कोषागार का अभिलेख समन नहीं किया गया और इसलिए याची के विरुद्ध किसी सामग्री के अभाव में उसके विरुद्ध विरचित आरोप याची द्वारा किसी जालसाजी या कपट को स्पष्ट रूप से अधिरोपित नहीं करते अपितु मामूली अनियमितताएं प्रकट करते हैं जिनके आधार पर याची पर अनिवार्य सेवानिवृत्ति का दण्ड अधिरोपित नहीं किया जा सकता ।

12. हम इस प्रक्रम पर याची के विरुद्ध विरचित आरोप पर विचार करते हैं । अनिवार्य सेवानिवृत्ति के आक्षेपित आदेश में उल्लिखित आरोपों का जिनकी उसके विरुद्ध जांच की गई थी, इस प्रकार उल्लेख किया जा सकता है :–

"आरोप-I

श्री एल. एल. माहेश्वरी ने एन.सी.सी. ग्रुप मुख्यालय, उदयपुर में रोकड़िया के रूप में कार्य करते हुए बहुत ही उपेक्षापूर्वक कार्य किया है क्योंकि उसने तारीख 9 फरवरी, 1978 को 505.85 रुपए के लिए कार्बन प्रति में एफ.वी.सी. बिल तैयार किया था और उसकी प्रविष्टि मद सं. 73 के सामने बिल रजिस्टर में की थी किन्तु उसने उपरोक्त

बिल की सत्यता के संबंध में हस्ताक्षर नहीं किए । बिल तारीख 10 फरवरी, 1978 को कोषागार भेजा गया था और तारीख 13 फरवरी, 1978 को कोषागार अधिकारी द्वारा पास कर दिया गया था । इस बिल के साथ कोषागार द्वारा विधिवत् रूप से पारित चिकित्सा प्रतिपूर्ति बिल को तारीख 14 फरवरी, 1978 को टोकन लिपिक ने श्री मान सिंह साइकिल सवार को सौंप दिया जिसे उसने श्री लक्ष्मी लाल माहेश्वरी रोकड़िया को सौंप दिया जो उस प्रयोजन के लिए कोषागार पहुंचा था । बिल एफ.वी.सी. 73 श्री माहेश्वरी ने खो दिया । उसने एन.सी.सी. ग्रुप मुख्यालय वापस आने के बाद अपने वरिष्ठ अधिकारियों को लिखित में मामले से अवगत नहीं कराया और बिल खो जाने के बारे में वह चुप रहा । इसलिए उसने उपेक्षा की थी ।

आरोप-II

श्री एल. एल. माहेश्वरी ने एन.सी.सी. ग्रुप मुख्यालय, उदयपुर में रोकड़िया के रूप में कार्य करते हुए एकल चाबी चेस्ट में सरकारी धनराशि रखते थे, जिसकी चाबी सदैव उसके पास रहती थी और वह उस समय धनराशि बाहर ले जाया करते थे, जब उसे किसी प्राधिकारी के बिना अपेक्षित था । इस प्रकार उसने अप्राधिकृत रीति का कार्य किया ।

आरोप-III

श्री एल. एल. माहेश्वरी को एन.सी.सी. ग्रुप मुख्यालय, उदयपुर में रोकड़िया के रूप में कार्य करते हुए डुप्लीकेट बिल तैयार करने के संबंध में जी.एफ. और ए. आर. के नियम 109(2) के अनुसार कार्य करना चाहिए था जिसको करने में वह असफल रहा । इस प्रकार उसने आहरण और संवितरण अधिकारी से तथ्य छुपाए थे और उसने ऐसा बिल को भुनाने के लिए किया ।

आरोप-IV

श्री एल. एल. माहेश्वरी ने एन.सी.सी. ग्रुप मुख्यालय, उदयपुर में रोकड़िया के रूप में कार्य करते हुए प्राप्ति रजिस्टर के रखरखाव में असफल रहा और अपनी शाखा में प्राप्त किए गए सभी कागजों की इस रजिस्टर में प्रविष्टि नहीं की । तथापि, उसने तारीख 11 मई, 1978 से प्राप्ति रजिस्टर में प्रविष्टियां करनी बिल्कुल बंद कर दीं ।

इस प्रकार उसने अपने कर्तव्यों के अनुपालन में उपेक्षा की ।

आरोप-V

श्री एल. एल. माहेश्वरी ने एन.सी.सी. ग्रुप मुख्यालय, उदयपुर में रोकड़िया के रूप में कार्य करते हुए प्रेषण के लिए पत्रों का जाली वितरण दर्शित किया ।

आरोप-VI

श्री एल. एल. माहेश्वरी ने एन.सी.सी. ग्रुप मुख्यालय, उदयपुर में रोकड़िया के रूप में कार्य करते हुए असावधानीपूर्वक और उपेक्षापूर्वक कार्य किया और एन.सी.सी. निदेशालय राजस्थान, जयपुर से प्राप्त कागजों पर कार्रवाई न करके तारीख 10 फरवरी, 1978 के बिल एफ.वी.सी.-73 की कपटपूर्वक भुनाने की जानकारी देने में विलंब किया ।

आरोप-VII

श्री एल. एल. माहेश्वरी ने एन.सी.सी. ग्रुप मुख्यालय, उदयपुर में रोकड़िया के रूप में कार्य करते हुए जी.आर. और ए.आर. ए.एस. के नियम 74 के उपबंधों का उल्लंघन किया, क्योंकि यह पाया गया कि उसने लेखन और रोजाना रोकड़ को बंद करने के बजाय मासिक रोकड़ पुस्तिका को बंद किया और वह भी उचित रूप से नहीं । उसने मासिक व्यय विवरणिका तैयार करने में विलंब किया और वह भी बिल रजिस्टर के बिना । इस प्रकार, उसने अपने कर्तव्यों का उचित रूप से पालन नहीं किया ।"

जांच रिपोर्ट का निष्कर्ष और आक्षेपित आदेश का प्रवर्तनीय भाग इस प्रकार है :–

"श्री एल. एल. माहेश्वरी ने अपने विरुद्ध विरचित किए गए आरोपों का उत्तर नहीं दिया । तथापि, आर.सी.एस. (सी.सी.ए.) नियम, 1958 के नियम 16 के अधीन नियमित जांच का आदेश किया गया था और स्क्वाडरन लीडर एम. एस. गुजराल ओ.सी. 6 राज. एयर स्क्वाडरन एन.सी.सी. उदयपुर को जांच अधिकारी के रूप में नियुक्त किया गया । श्री माहेश्वरी ने अपनी प्रतिरक्षा में कोई कथन करने से इनकार कर दिया और इस प्रकार जांच अधिकारी ने

दस्तावेजों और साक्षियों के आधार पर एकपक्षीय जांच कार्यवाही आरंभ की और श्री माहेश्वरी के विरुद्ध लगाए गए आरोपों के संबंध में नियमित जांच करने के पश्चात् जांच अधिकारी ने अपनी रिपोर्ट/ निष्कर्ष दिए । जांच अधिकारी द्वारा दी गई रिपोर्ट पर अभिलेख के साथ सावधानीपूर्वक विचार किया गया । जांच अधिकारी द्वारा दिए गए निष्कर्ष को ध्यान में रखते हुए श्री माहेश्वरी, उच्च श्रेणी लिपिक-सह-रोकड़िया के विरुद्ध सभी आरोप सिद्ध हुए हैं । जांच अधिकारी के आरोप-वार निष्कर्ष इस प्रकार हैं –

(क) श्री माहेश्वरी ने 505.85 रुपए की धनराशि के लिए तारीख 10 फरवरी, 1978 को एफ.वी.सी. बिल-73 के गुम होने के बारे में अपने वरिष्ठ अधिकारी को तुरन्त सूचना नहीं दी थी । उसने चार से पांच दिन के बाद एन.सी.सी. ग्रुप मुख्यालय, उदयपुर के कनिष्ठ लेखाकार को उक्त बिल के बारे में बताया था । तारीख 10 फरवरी, 1978 के एफ.वी.सी. बिल सं. 73 को श्री मान सिंह साइकिल सवार से श्री माहेश्वरी ने अपने कब्जे में ले लिया था । तारीख 10 फरवरी, 1978 के गुम हुए एफ.वी.सी. बिल 73 जिसे अंततः तारीख 14 फरवरी, 1978 को 9,505.85 रुपए पढ़ने के लिए कूटरचित किया गया था, कोषागार रजिस्टर के अनुसार प्रविष्टि सं. 64197 पर संदाय के लिए उल्लिखित किया गया था ।

(ख) उसने एकल चाबी तिजोरी में सरकारी धनराशि रोकड़िया के सन्नियमों की जानबूझकर अवहेलना की थी ।

(ग) उसने जी.एफ. और ए.आर. के नियम 109(2) की जानबूझकर अवहेलना की और तारीख 27 मार्च, 1978 के डुप्लीकेट बिल एफ.वी.सी.-73 तैयार किया और उसने स्पष्ट और साफ-साफ बड़े अक्षरों में 'डुप्लीकेट शब्द' को लाल स्याही में नहीं लिखा । तारीख 27 मार्च, 1978 के डुप्लीकेट एफ.वी.सी. बिल सं. 73 का संदाय तारीख 31 मार्च, 1978 को किया । उसने असद्भाविक आशय से आहरण और संवितरण अधिकारी को सूचना नहीं दी ।

(घ) उसने जानबूझकर डाक के प्राप्ति रजिस्टर में प्रविष्टियां करके उसे बंद कर दिया जो उसके द्वारा प्राप्त की

गईं । उपेक्षापूर्वक किए गए कार्य का न्यायालय ने यह निष्कर्ष निकाला कि श्री माहेश्वरी ने डाक प्राप्ति रजिस्टर में तिथि न डालकर परोक्ष आशय से तथ्यों को छुपाया ।

(ङ) उसने एन.सी.सी. निदेशालय राजस्थान, जयपुर से प्राप्त किए गए तारीख 30 मार्च, 1978 के पत्र सं. 11744/राज्य/लेखा/77-78 का उत्तर न भेज कर डाक प्रेषण रजिस्टर में जानबूझकर इस प्रकार प्रविष्टि की जैसे कि उसने उत्तर दे दिया है । पत्र तारीख 25 अप्रैल, 1978 के निर्देश सं. 303/क्यू-1/78-79/लेखा/106 के संदर्भ में एन.सी.सी. निदेशालय पत्र को उत्तर के रूप में तैयार किया जाना तात्पर्यित था । ऐसा उसने 9,505.85 रुपए की कपटपूर्वक निकासी समर्थ बनाने के लिए अपने असद्भाविक आशय के क्रियाकलापों को छुपाने के लिए किया था ।

(च) उसने जानबूझकर एन.सी.सी. समूह मुख्यालय, उदयपुर के रोकड़िया के लिए अधिकथित नियमों और विनियमों से हटकर कार्य किया था । उसने लापरवाहीपूर्ण और उपेक्षापूर्ण व्यवहार अपनाया । वह तारीख 10 फरवरी, 1978 के एफ.वी.सी.-73 द्वारा 9,505.85 रुपए की कपटपूर्ण निकाली गई धनराशि के बारे में एन.सी.सी. निदेशालय राजस्थान, जयपुर द्वारा पत्र लिखे जाने और पर्याप्त संकेत दिए जाने के बावजूद प्रकट किए जाने में विफल रहा यद्यपि पूछताछ पत्र लिखा गया था । तारीख 11 मई, 1978 के टेलीग्राम के माध्यम से 9,505.85 रुपए के लिए तारीख 10 फरवरी, 1978 के एफ.वी.सी. के बारे में पूछा गया था ।

(छ) उसने दैनिक रोकड़ पुस्तक में उल्लेख न करके और उसे बंद करके जी.एफ. और ए.आर. के नियम 74 के उपबंधों का जानबूझकर उल्लंघन किया और इसके बजाय उसने मासिक रोकड़ बुक बंद कर दी । उसने मासिक व्यय विवरण तैयार करते समय लापरवाही से बिल रजिस्टर की प्रति जांच नहीं की ।

इस प्रकार, जांच अधिकारी द्वारा आरोप सं. 1 से 7 के बारे में दी गई जांच रिपोर्ट पर विचार करते हुए श्री माहेश्वरी के विरुद्ध

आरोप साबित पाए और चूंकि उसे 9,505.85 रुपए के एफ.वी.सी. बिल की कपटपूर्वक निकाली गई राशि को निकालने में सुकर बनाने और ग़बन के रूप में सरकार को इस धनराशि की हानि पहुंचाने का दोषी पाया गया, इसलिए वह सख्त रूप से दण्डित किए जाने योग्य है । अतः, एन.सी.सी. समूह मुख्यालय, उदयपुर में तैनात श्री माहेश्वरी, उच्च श्रेणी लिपिक-सह-रोकड़िया को आर.सी.एस. (सी.सी.ए.) नियम, 1958 के नियम 14(V) में अन्तर्विष्ट उपबंधों के निबंधनों में तुरन्त प्रभाव से सेवा से अनिवार्य रूप से सेवानिवृत्त किया जाता है ।

श्री एल. एल. माहेश्वरी की निलंबन अवधि पेंशन, वेतन नियतन इत्यादि के प्रयोजन के लिए ड्यूटी करते हुए समझी जाएगी । उसे पूर्व में किए गए संदत्त जीवन निर्वाह के सिवाय निलंबन अवधि के लिए कोई वेतन और भत्ते संदत्त नहीं किए जाएंगे ।

ह./-

(के. एम. पोनप्पा)

एयर कोमोडोर

निदेशक एन.सी.सी.।'

13. अब हम विद्वान् अतिरिक्त मुख्य न्यायिक मजिस्ट्रेट सं. 3, उदयपुर के निर्णय के सुसंगत भाग को दृष्टिगत करते हुए भारतीय दण्ड संहिता की धारा 420 और 468 के अधीन अपराध से वर्तमान याची की दोषमुक्ति करने पर विचार करते हैं, जो इस प्रकार है :–

"9. इस मामले के तथ्यों को सुस्पष्ट करने के लिए अभियोजन तथ्यों एवं पत्रावली में प्रस्तुत दस्तावेजात के अवलोकन से यह तथ्य बना है कि अभियुक्त कमांडर एन.सी.सी. हैडक्वार्टर, उदयपुर के कार्यालय में कैशियर के पद पर नियुक्त होकर बिल बनाता है । बिल कोष कार्यालय भेजता है, वापस प्राप्त करता है, बैंक में बिल पास करके राशि प्राप्त करता है । यह बिल प्रदर्श पी-15 दिनांक 10.2.78 को एफ.ई.सी. बिल सं.-173 राशि रुपए 505.85 पैसे का बनाया गया जो बिल रजिस्टर में प्रदर्श पी-4 से अंकन है । इसको 10 फरवरी, 1978 को प्रदर्श डी-13 रजिस्टर में क्रमांक 77 पर कोष कार्यालय में भिजवाया गया जिस पर कोष कार्यालय के कर्मचारी

द्वारा प्राप्ति के हस्ताक्षर ए से बी हैं । ट्रेजरी बिल रिसिप्ट रजिस्टर में जो कि 10.2.78 का जो बिल है स्क्रोल नं. 64197 से पास हुआ, इसका प्रदर्श डी-11 में इंद्राज है इस तरह से जो बिल रुपए 505.85 पैसे का एन.सी.सी. हैडक्वार्टर से प्रदर्श पी-15 बनाया जाकर कोष कार्यालय में भिजवाया गया वह वापस प्राप्त नहीं हुआ, फिर एन.सी.सी. हैडक्वार्टर को यह ध्यान में आया कि उक्त बिल 9,505.85 रुपए का पास हुआ जबकि 505.85 रुपए का ही उक्त बिल बनाया गया था । ऐसा वहां पर हो गया, बिल किसके हाथ में चला गया, कहां से खो गया और किसने यह राशि प्राप्त कर ली इसकी छानबीन की गई तो प्रदर्श 15 में 9,000/- रुपए के अंक बढ़ाए गए कोष कार्यालय से भी 9,505.85 रुपए का ही बिल पास हुआ, जबकि बिल कोष कार्यालय में प्रदर्श डी-13 से रुपए 505.85 पैसे का ही कोष कार्यालय में भिजवाया गया था ।

10. उक्त बिल को विधि विज्ञान प्रयोगशाला, जयपुर भिजवाया गया जिसकी रिपोर्ट प्रदर्श पी-119 प्राप्त हुई । इस रिपोर्ट से यह पाया गया है कि प्रदर्श पी-15 में क्यू-1, क्यू-2, क्यू-3, क्यू-4 स्थान पर अर्थात् चार स्थान पर 9,000/- रुपए के अंक बढ़ाए गए और प्रदर्श पी-16 स्क्रोल रजिस्टर में एन्ट्री सं. 989 बी.क्यू-13 स्थान पर 9 का अंक बढ़ा दिया गया, इस तरह बिल जब ट्रेजरी भेजा गया तो उसके पश्चात् इस रजिस्टर प्रदर्श पी-16 में 9 का अंक बढ़ा दिया गया और प्रदर्श पी-15 में भी क्यू-1 चार स्थान पर "नौ" का अंक बढ़ाने से 9,000/- रुपए की राशि की वृद्धि कर दी गई । यह तो निर्विवाद है कि उक्त कूट रचना की गई, जब यह बिल पास हो जाता और वापस एन.सी.सी. हैडक्वार्टर पर न जाए, परन्तु रजिस्टर प्रदर्श डी-2 जोकि इनकैशमेंट रजिस्टर कहलाता है, में इसकी एंट्री नहीं हो तो यह बिल एन.सी.सी. हैडक्वार्टर पर आया ही नहीं, ट्रेजरी में 9,505.85 रुपए का बिल पास हुआ । घटना तथ्यों का अंत यहीं नहीं होता है, वरन् कूट रचना की पराकाष्ठा इस सीमा तक पहुंचती है कि ड्राइंग डिस्पर्सिंग अधिकारी भारत सिंह के हस्ताक्षर भी फर्जी कर दिए जाते हैं और जो सील कमांडर एन.सी.सी. हैडक्वार्टर, उदयपुर की भुगतान के लिए लगाई गई जो क्यू-8, 9, 10 है, वह फर्जी बना ली गई । छापें गलत लगा ली गईं, ड्राइंग डिस्पर्सिंग ऑफिसर के हस्ताक्षर फर्जी कर लिए गए और बैंक से राजेन्द्र शर्मा

नाम के व्यक्ति ने उक्त राशि प्राप्त कर ली, गौरतलब यह भी है कि क्यू-6 स्थान पर जहां राजेन्द्र शर्मा ने हस्ताक्षर किए वहां पर उसने यह लिखा रिसीव्ड 505.85 रुपए, परन्तु बैंक से 9,505.85 रुपए का ही भुगतान हुआ । विधि विज्ञान प्रयोगशाला की रिपोर्ट प्रदर्श पी-119 का रिजल्ट इक्जामिनेशन 7 जिसमें यह बताया गया है कि क्यू-142 जो राजेन्द्र शर्मा के हस्ताक्षर हैं, वे क्यू-1 व क्यू-6 जिसमें कि "नौ" का अंक बढ़ाया गया, उससे संबंधित हैं या नहीं इसकी राय कायम नहीं की जा सकती । उपर्युक्त नतीजे से यह तथ्य बना कि बिल ट्रेजरी से पास होने के पश्चात् एन.सी.सी. कमांडर के हस्ताक्षर फर्जी बना लिए गए, छापें फर्जी बना ली गईं, राजेन्द्र शर्मा नाम के व्यक्ति के हस्ताक्षर कर राशि प्राप्त कर ली गई । पूरे अनुसंधान में यह तथ्य नहीं है कि उक्त कृत्य अभियुक्त लक्ष्मी लाल ने किया हो । कूट रचना तो हुई है, किसने की यह भी पता नहीं चूंकि राजेन्द्र शर्मा नाम का कोई व्यक्ति एन.सी.सी. कार्यालय में है ही नहीं, पर ऐसा साक्ष्य भी नहीं है कि अभियुक्त लक्ष्मी लाल ने कूट रचना की हो ।

11. अभियोजन पक्ष की ओर से जो दूसरा तथ्य प्रस्तुत किया गया वह यह है कि प्रदर्श पी-18 बिल एफ.ई.सी. 173 नंबर का पुनः 27.3.1978 को अभियुक्त लक्ष्मी लाल कैशियर ने और बना दिया और कमांडर जे.एस. चड्ढा के हस्ताक्षर से यह बिल कोष कार्यालय भेजा गया । स्क्रोल नंबर 20023 दिनांक 28.3.78 द्वारा पास हो गया । यह बिल डाक तार विभाग की राशि चुकाने, जलदाय-विभाग के पैसे चुकाने एवं यायाअली की भुगतान बाबत था इसके लिए अभियोजन पक्ष का यह कथन है कि जब एक बिल दिनांक 10.2.78 को बन चुका था तो यह बिल 27.3.78 को क्योंकर बनाया गया, अगर यह बिल बनाया भी गया तो इस पर डुप्लीकेट बिल का अंक होना चाहिए, अधिकारी के नोटिस में लाया जाना चाहिए, पर यह सही हो कि इस बिल की राशि 505.85 रुपए के ट्रेजरी से पास हुए हैं । उक्त तीनों डाक तार विभाग, जलदाय विभाग, यायाअली को चुकाने में ही यह राशि दी गई । इसका अर्थ यह हुआ कि दिनांक 10.2.78 का बिल और 27.3.78 का बिल दोनों एक ही तरह के चुकाने के लिए दो बिल बने, दूसरा बिल जो बनाया गया उसके लिए अभियुक्त को जिम्मेदार माना जावे । यह अभियोजन पक्ष का कथन है । जबकि प्रतिरक्षा में यह कथन है कि चूंकि मार्च का महीना था, 31.3.78 को

वित्तीय वर्ष समाप्त हो रहा था उस मद में से यह राशि चुकानी आवश्यक थी और यह राशि चुकाने के लिए जब पहला बिल नहीं मिला तो यह दूसरा बिल बनाया । इसमें अभियुक्त की बेईमानी का उद्देश्य क्या रहा क्योंकि जो राशि प्राप्त हुई उनको रिकार्ड में व्यक्त किया गया और जिनको चुकाना था उनको ही चुकाया गया । उनके पास बाकी रह नहीं सकता था फिर भी अभियोजन का यही जोर रहा कि दूसरा बिल डुप्लीकेट नहीं लिखा उन्हें अधिकारी के ज्ञान में उक्त तथ्य नहीं लाए गए इसलिए अभियुक्त दूसरा बिल बनाने में कूट रचना में दोषी है ।

12. जैसाकि हमने ऊपर विवेचन किया है अब हमारे सामने दो तरह के तथ्य रहते हैं कि क्या प्रथम बिल अभियुक्त लक्ष्मी लाल के पास आया था ? इसके लिए अभियोजन ने मान सिंह साइकिल सवार पी-ङ 1 के बयान करवाए जिसमें उसका यह कथन है कि वह ट्रेजरी से बिल लाने का काम करता था और यह बिल भी संभवतया वह लाया हो, नहीं भी लाया हो, दो बिल साथ लाया था उसके रंग से साइज से पता नहीं यह मामूली पढ़ा लिखा व्यक्ति है । ट्रेजरी से बिल वापस देने के कहीं हस्ताक्षर न तो मान सिंह से लिए गए और न ही अभियुक्त लक्ष्मी लाल से लिए गए । इसलिए ट्रेजरी से यह बिल वापस मान सिंह अगर मौखिक रूप से यह कहता भी वह लाया तो यह संदेहास्पद है मान सिंह पी-ङ 1 गवाह दिग्भ्रमित व अपने बयानों पर अस्थिर है अपने कथनों को बार-बार बदलता है, आभास कयास से कथन करता है । इसके बयानों पर विश्वास नहीं किया जा सकता है । जगवंत सिंह पी-ङ 2 लेफ्टिनेंट कर्नल एन. सी. ग्रुप कमांडर, उदयपुर के पद पर था जिसने कथन किया कि लक्ष्मी लाल उनके आफिस में काम करता था, डिप्टी डायरेक्टर का टेलीफोन आया था कि रुपए 9,505.85 कुछ पैसे बिल से निकाले इस पर उसने अभियुक्त से पूछा और उसे यह निर्देश दिया कि वह ट्रेजरी में जाकर पता करें तो अभियुक्त ने पता कर बताया कि मूल रूप से रुपए 505.85 पैसे का ही बना था "नौ" का अंक बढ़ा दिया गया था और 9,000/- रुपए का गड़बड़ है जो राशि चुकानी थी जिसके लिए बिल बनाया गया उसका भुगतान अभियुक्त लक्ष्मी लाल ने और 25-27 दिन बाद दूसरा बिल तीनों ही राशि का बनाया गया उस पर वही नंबर डाले गए फिर भी इंक्वायरी की तो यह पाया कि मूल बिल ट्रेजरी से पास होकर

अभियुक्त को मिल गया था जो साइकिल सवार ने लाकर दिया था और उसे अभियुक्त पर शक होने से पुलिस थाना अंबामाता में इत्तला प्रदर्श पी-1 दर्ज करवाई जिसकी चैक प्रदर्श पी-2 है जिस पर उसके हस्ताक्षर हैं । प्रदर्श पी-7 से प्रदर्श पी-12 वे दस्तावेज हैं जो ट्रेजरी और इस गवाह के बीच में पत्राचार हुआ । भोपाल सिंह पी-ङ 3 जूनियर एकाउंटेंट एन.सी.सी. हैडक्वार्टर, उदयपुर में था वह यह बिल ट्रेजरी में भेजने का समर्थन करता है । दूसरा बिल जो बनाया उस पर डुप्लीकेट नहीं लिखा जब उसने अभियुक्त से पूछा कि दोबारा बिल क्यों बनाया तो अभियुक्त ने जवाब दिया कि पहले वाला बिल खोने की रिपोर्ट कर दी है और अगर बिल खो जाता है तो दूसरा बिल बनाया जाता है खोने की रिपोर्ट की जाती है उसको डुप्लीकेट बिल कहते हैं, पर इस गवाह के बयान से यह अर्थ निकलता है कि पहले बिल खो गया इसका पता चल गया तत्पश्चात् दूसरा बिल बनाया गया इसका आशय यह हुआ कि कैशियर ने अपने आप ही दूसरा बिल बना दिया हो ऐसी बात नहीं है, बल्कि विभाग में इसकी जानकारी हो चुकी थी । रामगोपाल अग्रवाल पी-ङ 4 भी अन्य कर्मचारी है जिसका यह कथन है कि निदेशालय, जयपुर से 9,505.85 रुपए की सूचना आई तो लक्ष्मी लाल से पूछा तो उसने यह जवाब दिया था कि यह रकम अपने नाम नहीं है उसने वह भोपाल सिंह बाबेज ने अधिकारी को नोटिस में डाल दिया कि बिल खो गया । दूसरा रामगोपाल पारीख पी-ङ 5 है जो सहायक लेखाधिकारी, एन.सी.सी. डायरेक्टर, जयपुर में था उसने इस मामले में जांच की थी तो रिपोर्ट प्रदर्श पी-13 के संलग्न प्रदर्श पी-14 उसने दिया था । 9,000/- रुपए का गबन पाया था । सुमेर सिंह पी-ङ 6 ने भी यह राशि उठी थी उसकी हैडक्वार्टर में रिपोर्ट की थी । निसार अहमद पी-ङ 7 लेखाकार है जोकि उन दिनों कोष कार्यालय में नियुक्त था और स्क्रोल रजिस्टर में अंकन करता था उसने प्रदर्श पी-16 पर क्रमांक संख्या 98 में क्यू-13 पर लिखा था यह नौ का अंक जो नौ हजार की राशि बढ़ाने के लिए किया गया यह उसके हाथ का लिखा हुआ नहीं है, यह बाद में कर लिया गया । गवाह वल्लभदास पी-ङ 8 जो कोष कार्यालय में सहायक लेखा अधिकारी बिल पास करता है जिसके हस्ताक्षर प्रदर्श पी-15 पर 'सी' से 'डी' हैं उसने अपने बयानों में इन तथ्यों का समर्थन किया कि "नौ" का अंक बढ़

कर कूट रचना की गई और उसके हस्ताक्षर 'सी' से 'डी' हैं वैसे यह गवाह है यह फोरजरी कहां हुई इसका स्पष्टीकरण नहीं हो पाता है यह खाली 9,505.85 रुपए का पास कर दिया हस्ताक्षर करता है । बिल को अच्छी तरह क्यों नहीं देखा इसके बारे में अपने जवाबों में अपने आपको छिपाने के अलावा तथा टालने के अलावा कुछ नहीं है । गवाह पी-ङ 9 महेशचन्द्र लेखाकार है जिसके हस्ताक्षर प्रदर्श पी-15 पर 'एक्स' 'वाई' से स्वयं के होने से इनकार करता है और यह कथन करता है कि किसके द्वारा फर्जी बनाए गए हैं वैसे इन हस्ताक्षरों की जांच नहीं करवाई गई है । ये हस्ताक्षर के बारे में यही माना गया कि इस गवाह के झूठ बोलने की संभावना है, क्योंकि इन्होंने अंधा होकर कूट रचित बिल को पास कर दिया । श्री करण सिंह पी-ङ 10 एस.बी.बी.जे. शाखा चेटक सर्कल उदयपुर में कैशियर के पद पर था उसने प्रदर्श पी-15 की राशि 9,505.85 रुपए राजेन्द्र शर्मा नामक व्यक्ति को चुकायी प्रदर्श पी-15 पर 'ई' 'एफ' से उसके हस्ताक्षर हैं । राजेन्द्र शर्मा नाम के व्यक्ति को नहीं पहचानता । बैंक में साधारणतया भुगतान ड्राईंग डिस्पर्सिंग अधिकारी द्वारा हस्ताक्षर जो प्रमाणित किया जाता है उसके आधार पर कर दिया जाता है । वैसे छापों का मिलान और हस्ताक्षरों का मिलान कर लिया जाए तो ठीक रहता, लेकिन इस मामले में कूट रचना इतनी चालाकी और होशियारी से की गई थी कि सामान्य क्रम में यह बात पकड़ में आना संभव नहीं है । बसंत कुमार पी-ङ 11 जो 27.3.1978 को ट्रेजरी आफिस में रिलीविंग क्लर्क था उसने प्रदर्श पी-17 में इंद्राज किया था जोकि प्रदर्श पी-18 है । यह तो सही है कि किसी ने उक्त बिल पेश होने के बारे में कोई विवाद नहीं किया है । मीठालाल पी-ङ 12 स्क्रोल नंबर में एन्ट्री करने का कथन करता है जिसमें 9,000/- रुपए का अंक नहीं था । अर्जुन लाल पी.डी-13 प्रदर्श पी-15 पर बिल जब बैंक में आया तो टोकन इश्यू किया था उस समय रुपए 9,505.85 पैसे का ही बिल था । फकीर चंद पी-ङ 14 राज्य वित्तीय विज्ञान प्रयोगशाला में सहायक निदेशक प्रलेख खण्ड के पद पर कार्यरत रहा है, उसने ट्रेनिंग की, विदेश गया, ट्रेनिंग लेकर आया तो इस मामले के दस्तावेज एफ.वी.सी. बिल उसे प्राप्त हुआ जो प्रदर्श पी-15 है उस पर उसने सारे मिलान किया और रिपोर्ट प्रदर्श पी-119 बनाई जिसका कि विश्लेषण ऊपर कर चुके हैं । लेफ्टिनेंट कर्नल भरत सिंह पी-ङ 15

यद्यपि दिनांक 9.7.1980 को साक्ष्य के रूप में उपस्थित आया, परन्तु उसके पश्चात् उनकी मृत्यु हो जाने से उनके बयान नहीं हो सके इन्हीं के हस्ताक्षर ड्राईंग डिस्पर्सिंग आफिसर के रूप में फर्जी बना लिए गए थे । इस गवाह की मौत हो जाने के मामले में तथ्यों पर इसकी ओर से कोई प्रकाश नहीं पड़ता है । पुरुषोत्तम लाल पी-ङ 16 जांच अधिकारी जो सहायक लेखा अधिकारी एन.सी.सी. डायरेक्ट्रेट में था उन्होंने जांच की जिसकी रिपोर्ट प्रदर्श पी-120 है । जांच रिपोर्ट को साक्ष्य का अंक नहीं मानते हैं, लेकिन जो असल दस्तावेज इन्होंने अवलोकन किया उनका हमने हमारा निष्कर्ष निकालने के लिए वैसे ही ऊपर विवेचित कर दिया है । मेजर जे.एस. चड्ढा पी-ङ 17 दूसरा बिल प्रदर्श पी-18 जो बैंक में असिस्टेंट एकाउन्टेंट के पद पर था, प्रदर्श पी-15 उसने पेश किया था और खजांची के पास भेजा था । इस सामान्य अनुक्रम में उसने किया था । हमीदुल्ला खान पी-ङ 19 एस.एच.ओ. थाना अंबामात था उसे वह अनुसंधान मिला था और उसने इसमें जांच की, दस्तावेजात प्रदर्श पी-16, प्रदर्श पी-121 से 123 प्राप्त किए । लहरू लाल पी.डी-20 एन.सी.सी. हैडक्वार्टर की रिपोर्ट थाने पर प्राप्त होने पर मुकदमा दर्ज करने का कथन करता है । प्रदर्श पी-1,2 पर उसके हस्ताक्षर है । एफ.एस.एल. हेतु दस्तावेज लिए गए हैं । तहरीर की कार्बन कॉपी प्रदर्श पी-124 पर उसके हस्ताक्षर हैं । प्रदर्श पी-125 उसे प्राप्त हुई ।

13. अभियुक्त लक्ष्मी लाल के बयान मुलजिम में सभी गवाहान के बयानों का खुलासा करता है जिसमें उसका यह कथन है कि ट्रेजरी का जो बिल पास हुआ है उसका उससे कोई संबंध नहीं है, बैंक में जो राशि अदा की जाती है उसका भी उससे कोई संबंध नहीं है । राजेन्द्र शर्मा नाम के व्यक्ति को वह नहीं जानता, कौन राशि उठा ले गया, उससे कोई संबंध नहीं और इस तरह गवाह ने इसके खिलाफ कैसे कहा जो प्रक्रिया अपनाई गई उसके बारे में उन्होंने वर्णन किया, स्वयं साक्षी डी.ड.1 के रूप में उपस्थित हुआ और उसने अपने द्वारा किए गए कार्य का खुलासा किया जिसमें उसने कथन किया कि प्रदर्श पी-15 रुपए 505.85 पैसे का बिल ही बनाया । जिस मान सिंह के लिए यह कहा जा रहा है कि उसने बिल लेकर के दिया उसने उसे कोई बिल लाकर नहीं दिया केवल एक मेडिकल बिल था जो लाकर दिया था । यह बिल ट्रेजरी के भेजने के पश्चात् उसके

पास कभी वापस नहीं आया । उसका यह भी कथन है कि प्रदर्श पी-18 उसने जूनियर एकाउन्टेंट भोपाल सिंह बाबेल के निर्देशानुसार दोबारा बनाया यद्यपि डुप्लीकेट नहीं लिखा हुआ है पर बिल बनाया गया और बिल की राशि जिनको चुकानी थी वह चुकायी गई ।

14. इस तरह से जो द्वितीय बिल प्रदर्श पी-18 बनाया गया उसमें जो राशि रुपया 505.85 पैसे उठाए गए, वह राशि जिनको चुकानी थी नहीं चुकायी गई इसमें अगर अनियमितता का कोई कारण रहा है तो वह यह हो सकता है कि अभियुक्त ने डुप्लीकेट शब्द नहीं लिखा हो लेकिन यह राशि उसने बेईमानीपूर्वक प्राप्त नहीं की है । दूसरा यह बिल नियमानुसार सभी रजिस्टरों में अंकन कर प्रक्रियात्मक रूप से बिल पास हुआ है इसलिए इस बिल को कूट रचित बिल नहीं कहा जा सकता है ।

15. जहां तक प्रथम बिल प्रदर्श पी-15 का प्रश्न है, अभियुक्त लक्ष्मी लाल द्वारा मूल रूप से रुपए 505.85 पैसे का ही बिल बनाया गया ट्रेजरी में प्रविष्टि प्रदर्श डी-13 है । प्रदर्श पी-13 के रजिस्टर से साफ है कि उस समय तक भी रुपए 505.85 पैसे का ही बिल वहां भिजवाया गया । वल्लभदास पारीख पी-ङ 8, निसार अहमद पी-ङ 9 जिनके कि हस्ताक्षर प्रदर्श पी-15 पर क्रमशः 'सी' से 'डी' व 'एक्स' से 'वाई' हैं और यह वहीं किए जिन्होंने कि इस बिल को पास किया, अगर यह इस बिल को सामान्य ज्ञान से ही उलटकर देखते तो इसकी कूट रचना शीशे की तरह साफ नजर आती है, इन दोनों ने क्योंकर यह ध्यान नहीं दिया, यह कहने की स्थिति में हम नहीं हैं, परन्तु इन्होंने अपने जिम्मे के कर्तव्य का पालन नहीं किया है । कूट रचना किस तरह से हो गई यह सारा रहस्य पर्दे में ही है, परन्तु उक्त दोनों कर्मचारियों जोकि ट्रेजरी में कार्यरत थे और वहीं से बिल पास हुआ तो वहीं से कूट रचित होकर बैंक गया और वहीं त्रुटि हुई है । इस बिल में अभियुक्त लक्ष्मी लाल ने कूट रचना की हो उसका कोई योगदान हो न तो ऐसा कोई साक्ष्य है न ही ऐसी कोई परिस्थिति है जो उसे इस अपराध में लिप्त करती हो । यहां पर यह भी उल्लेख कर दिया जाना उचित समझता हूं कि अभियोजन ने अभियुक्त पर अपराध डुप्लीकेट बिल न लिखने के आधार पर बनाया है, लेकिन ड्राईंग डिस्पर्सिंग आफिसर लेफ. कर्नल जे.एस. चड्ढा के नाम से

हस्ताक्षर किए हैं । उन्होंने उक्त रजिस्टर देखा है और दूसरा बिल जो उधार पैसे चुकाने थे उसी का बनाया गया उसी के लिए लिया गया है । इसलिए दूसरे बिल के लिए भी यह कहा जा सकता है कि वह कूट रचित है । जहां तक सुसंगत नियम सामान्य वित्तीय लेखा नियम सामान्य प्रक्रियात्मक नियम जो सारे कार्यालयों में होते उनका अगर किसी तरह से उल्लंघन हो गया हो तो भी वह अभियुक्त को कूट रचना के अपराध से संयोजित नहीं करता है और कूट रचना के जो तत्व हैं उसमें से कोई तत्व अभियुक्त के लिए सुसंगतता में नहीं आते हैं । अतः अभियुक्त लक्ष्मी लाल ने विवादित बिल में कूट रचना की हो, का तथ्य संदेह से परे साबित नहीं होता है । जब अभियुक्त ने बिल कूट रचित ही नहीं किया, उसकी राशि भी उसके द्वारा नहीं उठाई गई तो बेईमानीपूर्वक या छलपूर्वक अभियुक्त ने यह राशि प्राप्त नहीं की है । जहां तक दूसरा बिल बनाने का प्रश्न है, जैसाकि हम ऊपर विवेचित कर चुके हैं कि प्रक्रियात्मक शब्दावली, नियमावली का उल्लंघन हो सकता है, लेकिन अपराध करने का कृत्य नहीं है जो राशि चुकानी थी उसके लिए बिल बनाकर उठाया गया है । नियमानुसार सभी रजिस्टर में अंकन हैं । अतः यह कि अभियुक्त ने कूट रचित बिल से बेईमानीपूर्वक राशि प्राप्त की थी अथवा करने दी, का तथ्य भी संदेह से परे साबित होता है ।

विचारण बिन्दु नं. तीन

16. विचारण बिन्दु एक व दो के नकारात्मक निर्धारण हो जाने से अभियुक्त के विरुद्ध यह तथ्य कि "उसने विवादित बिल की कूट रचना कर छलपूर्वक राशि प्राप्त की हो व करने दी", संदेह से परे साबित नहीं होता है । अतः अभियुक्त उसके विरुद्ध विरचित आरोप अंतर्गत धारा 468, 420 भारतीय दण्ड संहिता में दोषमुक्त होने योग्य है ।

आदेश

17. फलतः अभियुक्त लक्ष्मी लाल उसके विरुद्ध विरचित आरोप अंतर्गत धारा 468, 420 भारतीय दण्ड संहिता से दोषमुक्त किया जाता है । अभियुक्त द्वारा प्रस्तुत जमानत मुचलके निरस्त किए जाते हैं ।

(शिव सिंह चौहान)

18. निर्णय आज दिनांक 17.4.1996 को खुले न्यायालय में सुनाया गया ।

(शिव सिंह चौहान) ।"

14. उक्त दोषमुक्ति आदेश तारीख 17 अप्रैल, 1996 को सुनाया गया है, इसलिए इसे अनुशासनिक अधिकारी के समक्ष प्रस्तुत करने का कोई प्रश्न नहीं था, जिसने तारीख 9 मई, 1984 को अर्थात् इसके काफी पहले अनिवार्य सेवानिवृत्ति का आदेश पारित कर किया था, तथापि, अपील प्राधिकारी निश्चित रूप से इससे अवगत था और उक्त दोषमुक्ति आदेश उसके अभिलेख पर था किन्तु इसके बावजूद अपील प्राधिकारी ने ब्यौरे पर विचार किए बिना याची के विरुद्ध के दोनों प्रकार की कार्यवाहियों में अपेक्षित सबूत के मानक की विधिक भिन्नता पर निष्कर्ष दिया और मात्र जांच अधिकारी के निष्कर्षों का अवलंब लिया और सरसरी तौर पर तारीख 9 मई, 1984 को अनिवार्य सेवानिवृत्ति के आदेश को सही ठहराया और इस प्रकार न्याय की हानि हुई ।

15. यद्यपि याची के विरुद्ध उपरोक्त उल्लिखित आरोप और अभिकथन द्वारा कूट रचना करने का प्रत्यक्ष आरोप नहीं है तथापि, ये अप्रत्यक्ष रूप से उसी घटना से संबंधित हैं और आरोप वरिष्ठ प्राधिकारी के अनुदेशों पर प्रत्यर्थी कार्यालय के मामूली खर्चों के संदाय के लिए 505.85 रुपए के लिए उक्त एफ.वी.सी. बिल सं. 73 के डुप्लीकेट बिल बनाने जैसी मामूली अनियमितताएं स्पष्ट रूप से प्रकट होती हैं और अधिकारी को मामले की तुरन्त रिपोर्ट न करने से संबंधित हैं । यदि यह उपधारित कर लिया जाए कि आरोप याची के विरुद्ध एक-पक्षीय जांच में साबित होते हैं तो भी उसकी सेवा के मध्य में उसके ऊपर अधिरोपित अनिवार्य सेवानिवृत्ति का दण्ड पूर्ण रूप से अन्यायोचित और अनावश्यक था । यह केवल एक पुराने कर्मचारी की अनिवार्य सेवानिवृत्ति पर बेदाग़ या निष्कलंक सेवानिवृत्ति नहीं थी अपितु यह दण्ड आदेश था और जिस पर अपील प्राधिकारी दोषमुक्ति आदेश के परिप्रेक्ष्य में संपूर्ण मामले पर पुनः विचार करने के लिए आबद्ध था ।

16. अनिवार्य सेवानिवृत्ति की उपधारणा सुस्थापित है और यदि विभाग के सक्षम प्राधिकारी की यह राय है कि अभिलेख पर उपलब्ध सामग्री के आधार पर, प्रश्नगत सरकारी सेवक एक बोझ है और निष्क्रिय है जो सेवा से हटाने योग्य है तो सेवक द्वारा अर्हक सेवा पूरी करने के पश्चात् ऐसे

कर्मचारी को हटाया जा सकता है । किन्तु, यहां एक ऐसा मामला है जहां याची का उसी घटना पर आधारित अपराधों के लिए विचारण किया गया था जिसके लिए उस पर आरोप पत्र की तामील की गई थी और दाण्डिक विचारण भी किया गया था और इसलिए प्रत्यर्थियों को ऋजुतापूर्वक दाण्डिक विचारण के लिए इंतजार करना चाहिए था और ठोस आधारों पर दोषमुक्ति को दृष्टिगत करते हुए याची को विभागीय जांच में भी दोषमुक्त किया जा सकता था किन्तु ऐसा नहीं हुआ, अतः अपील प्राधिकारी दोषमुक्ति के आदेश में दिए गए कारणों पर अपने विवेक का प्रयोग करते हुए और मामूली अनियमितताओं और उपेक्षाओं के आरोपों पर जो याची द्वारा की जानी अभिकथित की गईं थीं, आधारित अनिवार्य सेवानिवृत्ति के आदेश को अपास्त करना चाहिए था क्योंकि उसके विरुद्ध विभाग द्वारा जालसाज़ी और कपट के अभिकथनों के आरोप विरचित नहीं किए गए थे और याची के विरुद्ध ऐसा कोई साक्ष्य नहीं है कि उसने ऐसी जालसाजी करके उक्त एफ.वी.सी. बिल के लिए 9,000/- रुपए की अधिक राशि निकालने को सरल बनाया था ।

17. दंड न्यायालय के निष्कर्षों से स्पष्ट रूप से यह दर्शित होता है कि किसी व्यक्ति ने 9 का अंक कोषागार कार्यालय में जोड़ा था, जहां मान सिंह, चपरासी द्वारा बिल प्राप्त किया गया था और बिल पास होने के पश्चात् धनराशि श्री राजेन्द्र कुमार शर्मा को संदत्त की गई थी न कि याची को जैसाकि न्यायालय द्वारा परीक्षा किए गए बैंक कर्मचारी पी.डब्ल्यू.10 करण सिंह ने अपने कथन में कहा है । बैंक कर्मचारी वर्तमान याची को बहुत अच्छी तरह से जानता था, जो प्रत्यर्थी विभाग में रोकड़िया-सह-उच्च श्रेणी लिपिक के रूप कार्य कर रहा था और अनेक अवसरों पर उक्त प्रत्यर्थी विभाग के लेन-देन के लिए बैंक जाता था और इसलिए, उक्त बैंक कर्मचारी ने न्यायालय के समक्ष यह कथन किया है कि प्रश्नगत संदाय याची को नहीं किया गया था अपितु राजेन्द्र कुमार शर्मा नामक व्यक्ति को किया गया था । अतः याची के विरुद्ध किसी ठोस सामग्री के अभाव में और संपूर्ण दोषमुक्ति को ध्यान में रखते हुए और याची की उक्त अपराध से दोषमुक्ति को दृष्टिगत करते हुए इस न्यायालय की यह सुविचारित राय है कि अनिवार्य सेवानिवृत्ति का दण्ड पूर्णतया कठोर और अनावश्यक था इसलिए अपील प्राधिकारी याची के मामले में दंड न्यायालय में संवृद्धियों पर विचार करने में पूर्णतया विफल रहा यद्यपि अपील प्राधिकारी ने तारीख 1 जुलाई, 1997 को आदेश पारित किया था और तारीख 17 अप्रैल, 1996

को याची की दोषमुक्ति करने वाला दंड न्यायालय का निर्णय उपलब्ध था और उसके समक्ष पेश किया गया था तथा तारीख 1 जुलाई, 1997 को आक्षेपित आदेश में निर्दिष्ट किया गया था । अतः उक्त अनुशासनिक प्राधिकारी द्वारा रटी-रटायी रीति में आदेश दोहराने से अपील प्राधिकारी की ओर से विवेक का प्रयोग न करना दर्शित करता है ।

18. उच्चतर प्राधिकारी को अपील के द्वारा किसी प्रभावी उपचार के लिए उपबंधित प्रयोजन वर्तमान मामले में स्पष्ट रूप से विफल प्रतीत होता है जहां विवेक का प्रयोग न किया गया हो । अलग-अलग क्षेत्रों में दोनों कार्यवाहियों को करने यह अर्थ नहीं होता है कि एक कार्यवाही के निष्कर्ष अन्य कार्यवाहियों में विचार में न लिया जाए और एक कार्यवाही के प्रभाव पर दूसरी में विचार नहीं किया जा सकता । यद्यपि दोनों कार्यवाहियों को जो एक साथ चली हैं पानी के समान पृथक् नहीं किया जा सकता तथापि, प्राधिकारियों से जो अनुशासनात्मक कार्यवाहियां आरंभ करते हैं, तथ्य और परिस्थितियों पर और वास्तविकताओं पर विवेक का प्रयोग करना अपेक्षित है और वे दाण्डिक विचारण में सक्षम न्यायालय के निष्कर्षों की पूर्ण रूप से उपेक्षा नहीं कर सकते जब वे उन्हीं तथ्यों और सामग्री के आधार पर सरकारी सेवक के विरुद्ध अनुशासनात्मक कार्यवाहियों पर विचार करते हों ।

19. इस न्यायालय का यह निष्कर्ष है कि वर्तमान मामला दंड न्यायालय के विस्तृत निर्णय के लिए अपील प्राधिकारी द्वारा आंख मूंद लेने का स्पष्ट उदाहरण है जो निर्णय उसके समक्ष निश्चित रूप से पेश किया गया था और ये दलीलें भी दी गईं थीं कि उसके आधार पर आक्षेपित आदेश द्वारा दिया गया अनिवार्य सेवानिवृत्ति का दण्डादेश अभिखंडित किए जाने योग्य है । अन्यथा परिणाम यह होगा कि यद्यपि याची को अनेक साक्षियों की परीक्षा के पश्चात् उल्लिखित विस्तृत निर्णय द्वारा दंड न्यायालय द्वारा सम्मानपूर्वक और पूर्ण रूप से दोषमुक्त ठहराए जाने पर भी बिना कारण के सेवा से हटाए जाने का दंड भोगना होगा, ऐसा विधि में अनुज्ञेय नहीं है ।

20. इस परिस्थिति पर न्यायालय में वकीलों द्वारा उद्धृत विधियों की संक्षिप्त चर्चा करनी होगी ।

(i) माननीय उच्चतम न्यायालय ने **कैप्टन एम. पॉल एंथनी** बनाम

भारत गोल्ड माइंस लि. और एक अन्य[1] वाले मामले में यह अभिनिर्धारित किया है कि यदि विभागीय कार्यवाहियां और दाण्डिक मामला एक जैसे तथ्यों पर आधारित हैं तो यह वांछनीय है कि दाण्डिक मामले के पूरा होने तक विभागीय कार्यवाहियां रोक दी जाएं और यह भी अनुज्ञेय है कि यदि दाण्डिक मामले में कार्यवाही नहीं होती है या इसके निपटान में अनुचित विलंब होता है तो विभागीय कार्यवाहियां, यदि वे दाण्डिक मामले के लंबित रहने के कारण रोक दी गई हैं, आरंभ की जा सकती हैं जिससे कि उनका शीघ्र निपटारा हो सके । प्रयोजन यह है कि यदि कर्मचारी दोषी नहीं पाया जाता है तो उसका सम्मान बना रहे और यदि वह दोषी पाया जाता है तो प्रशासन उससे शीघ्र ही छुटकारा पा ले । निर्देश के लिए निर्णय के पैरा 15 और 22 के सुसंगत उद्धरण इस प्रकार हैं :–

> "इस आधारभूत सिद्धांत के बारे में यह एक जैसी न्यायिक राय है कि किसी दाण्डिक मामले में कार्यवाहियां और विभागीय कार्यवाहियां एक साथ चल सकती हैं सिवाय जहां विभागीय कार्यवाहियां और दाण्डिक मामला एक जैसे तथ्यों पर आधारित हैं और दोनों कार्यवाहियों पर साक्ष्य एक समान हैं । इस प्रतिपादना के लिए यह आधार है कि किसी दाण्डिक मामले में कार्यवाहियां और विभागीय कार्यवाहियां भिन्न और पृथक्-पृथक् अधिकारिता क्षेत्र रखती हैं । विभागीय कार्यवाहियों में अनुशासनात्मक प्राधिकारी के विवेक में विभिन्न तथ्य उत्पन्न हो सकते हैं जैसे कि अनुशासन का प्रवर्तन या अपचारी या अन्य स्टाफ की सत्यनिष्ठा के स्तर की जांच करना इन दोनों कार्यवाहियों में अपेक्षित सबूत का मानक भी निम्न प्रकार का हो सकता है जो किसी दांडिक मामले में अपेक्षित है । जबकि विभागीय कार्यवाहियों में सबूत के मानक में से एक संभावनाओं की प्रबलता है; किसी दाण्डिक मामले में, अभियोजन द्वारा आरोप युक्तियुक्त संदेह के परे साबित किए जाने चाहिए ।
>
> इस बिन्दु पर उच्चतम न्यायालय के अनेकों विनिश्चयों से जो निष्कर्ष निकलते हैं, वे इस प्रकार हैं : (i) विभागीय कार्यवाहियां और किसी मामले में दाण्डिक कार्यवाहियां एक साथ की जा सकती हैं क्योंकि इनको इसमें एक साथ संचालित करने में कोई वर्जन नहीं है भले ही ये पृथक्-पृथक् हों; (ii) यदि विभागीय कार्यवाहियां और

[1] (1999) 3 एस. सी. सी. 679 = ए. आई. आर. 1999 एस. सी. 1416.

दाण्डिक मामला समरूप और एक जैसे तथ्यों पर आधारित हैं और दाण्डिक मामले में दोषी कर्मचारी के विरुद्ध आरोप गंभीर प्रकृति का है जिसमें विधि का जटिल प्रश्न और तथ्य अंतर्वलित है, तो दाण्डिक मामले के निष्कर्ष तक विभागीय कार्यवाहियां रोकना वांछनीय है; (iii) क्या किसी दाण्डिक मामले में आरोप की प्रकृति गंभीर है और क्या तथ्य और विधि के जटिल प्रश्न उस मामले में अंतर्वलित हैं, यह बात अपराध की प्रकृति पर निर्भर होगी, और अन्वेषण के दौरान उसके विरुद्ध संगृहीत सामग्री और साक्ष्य के आधार पर कर्मचारी के विरुद्ध संस्थित मामले की प्रकृति पर निर्भर करेगी; (iv) उपर्युक्त (ii) और (iii) में उल्लिखित कारक विभागीय कार्यवाहियां रोकने के लिए विचार में नहीं लिए जाएंगे किन्तु इस तथ्य पर ध्यान दिया जाएगा कि विभागीय कार्यवाहियां अनुचित रूप से विलंबित न हों; (v) यदि दाण्डिक मामले में कार्यवाही नहीं की जाती है या इसके निपटान में अनुचित रूप से विलंब किया जा रहा है, तो विभागीय कार्यवाहियां भले ही वे दाण्डिक मामले के लंबित रहने के कारण रोक दी जाती हैं, आरंभ नहीं की जा सकतीं जिससे कि उनको शीघ्र निपटाया जा सके और यदि कर्मचारी दोषी नहीं पाया जाता है तो उसका सम्मान बचा रहे और यदि वह दोषी पाया जाता है तो प्रशासन अतिशीघ्र उससे छुटकारा पा सके ।"

इस प्रकार, सरकारी सेवक के विरुद्ध एक साथ दोनों कार्यवाहियों अनुध्यात करते हुए, माननीय उच्चतम न्यायालय ने यह स्पष्ट रूप से अधिकथित किया है कि दोनों कार्यवाहियों की उपेक्षा नहीं की जा सकती, इसलिए यह वांछनीय है कि सरकारी सेवक के विरुद्ध दाण्डिक विचारण चल रहा हो तो विभागीय कार्यवाही न की जाए जहां तथ्य और साक्ष्य एक जैसे हों जैसाकि वर्तमान मामले में है ।

(ii) एक ऐसे ही मामले में माननीय उच्चतम न्यायालय ने **एम. वी. बिजलानी** बनाम **भारत संघ और अन्य**[1] वाले मामले में यह अभिनिर्धारित किया है कि जहां अपचारी प्रक्रियात्मक रजिस्टरों के गैर-अनुरक्षण के लिए आरोपित है किन्तु चोरी या टेलीग्राफ कॉपर तार के 4000 किलोग्राम के दुर्विनियोग या उससे संबंधित दुरुपयोग के लिए आरोपित नहीं है, यद्यपि आरोप सी.बी.आई. की रिपोर्ट की प्राप्ति के पश्चात् विरचित किए गए हैं,

[1] (2006) 5 एस. सी. सी. 88.

न्यायालय ने अनुशासनात्मक प्राधिकारी और अपील प्राधिकारी के आक्षेपित आदेश जो जांच रिपोर्ट पर आधारित थे, निम्नलिखित निबंधनों में अभिखण्डित कर दिए :–

"हमें जांच रिपोर्ट के परिशीलन से, यह प्रतीत होता है कि अनुशासनात्मक प्राधिकारी ने गलत आधार पर कार्यवाही की थी । अपीलार्थी को मूल रूप से ए.सी.ई.-8 रजिटर के गैर-अनुरक्षण के लिए आरोपित किया गया था । उसे चोरी या 4000 किलोग्राम टेलीग्राफ कॉपर तार के दुर्विनियोग या उससे संबंधित दुरुपयोग के लिए आरोपित नहीं किया गया था । यदि उसके विरुद्ध कॉपर तार के दुरुपयोग के आधार पर उक्त धनराशि के दुर्विनियोग के लिए कार्यवाही की जाती तो अनुशासनात्मक प्राधिकारी के लिए यह आवश्यक था कि वह इस संबंध में समुचित आरोप विरचित करता । यह कहा गया है कि आरोप सी.बी.ई. (भ्रष्टाचार निरोध ब्यूरो) से रिपोर्ट प्राप्त होने के बाद विरचित किए गए थे । अतः यह प्रत्याशित था कि अपीलार्थी द्वारा कॉपर तार के दुरुपयोग/दुर्विनियोग का निश्चित आरोप विरचित किया गया था । अतः अपीलार्थी को उस स्टोर के दुरुपयोग के लिए आरोपित किया जाना चाहिए जो उसके प्रभार में था और उसके विरुद्ध इन आधारों पर विभागीय कार्यवाही की जानी चाहिए थी । द्वितीय आरोप से यह उपदर्शित होता है कि वह लाइन के कार्य का पर्यवेक्षण करने में असफल रहा था । यह आरोप नहीं लगाया गया था कि वह उस कॉपर तार का हिसाब रखने में विफल रहा था जिसके ऊपर उसका नियंत्रण था ।

15. यह उल्लेखनीय है कि आरोप ए.सी.ई.-8 रजिस्टर के केवल गैर-अनुरक्षण और लाइन के कार्य के गैर-पर्यवेक्षण के संबंध में विरचित किए गए थे । ऐसे किसी आरोप के अभाव में कि तथ्यतः उसने अपने निपटान के अन्तर्गत अपने स्वयं के लाभ के लिए कॉपर तार का दुर्विनियोग किया था, कॉपर तार के 4000 किलोग्राम के दुरुपयोग द्वारा तात्पर्यित अवचार से संबंधित प्रश्न पर विचार नहीं किया जा सकता है । इसके अतिरिक्त, यह नहीं दर्शाया गया है कि ए.सी.ई.-8 रजिस्टर किसी समुचित प्ररूप या विशिष्ट रीति में अर्थात् बंद प्ररूप या खुली शीटों में रखा जाना अपेक्षित था ।

25. यह सत्य है कि न्यायालय की न्यायिक पुनर्विलोकन की

अधिकारिता परिसीमित है । तथापि, अनुशासनात्मक कार्यवाहियां अर्ध-दाण्डिक प्रकृति की होती हैं और इसमें आरोप साबित करने के लिए कुछ साक्ष्य होने चाहिए । यद्यपि विभागीय कार्यवाहियों में आरोप दाण्डिक विचारण अर्थात् सभी युक्तियुक्त संदेहों के परे साबित किया जाना अपेक्षित नहीं है, तथापि, हम इस तथ्य की उपेक्षा नहीं कर सकते हैं कि जांच अधिकारी अर्ध-न्यायिक कार्य करता है, जिसे दस्तावेजों के विश्लेषण के आधार पर यह निष्कर्ष निकालना आवश्यक है कि अभिलेख पर की सामग्री के आधार पर आरोप साबित करने के लिए संभावना की प्रबलता मौजूद है । ऐसा करते हुए, वह किसी असंगत तथ्य को विचार में नहीं ले सकता है । वह सुसंगत तथ्यों को विचार में लेने से इनकार नहीं कर सकता है । वह सबूत के भार को बदल नहीं सकता है । वह केवल अनुमानों और अटकलबाजियों के आधार पर साक्षियों के सुसंगत साक्ष्य को खारिज नहीं कर सकता । वह उन अभिकथनों की जांच नहीं कर सकता जिनके लिए अपचारी अधिकारी को आरोपित नहीं किया गया है ।

26. जांच अधिकारी की रिपोर्ट में ऊपर उल्लिखित कमियां हैं । अतः अनुशासनात्मक प्राधिकारी और अपील प्राधिकारी के आदेश भी जो उक्त जांच रिपोर्ट पर आधारित हैं, कायम नहीं रखे जा सकते हैं । हमने उस रीति की अवेक्षा की है जिसमें अधिकरण ने मामले पर विचार किया है । उच्च न्यायालय ने अपने निष्कर्षों में यह भी उल्लेख किया है कि अधिकरण ने अपीलार्थी द्वारा दी गई दलीलों पर गहराई से विचार नहीं किया है । अतः अधिकरण भी अपने उचित कृत्यों का उचित रूप से निर्वहन करने में असफल रहा है ।"

(iii) उच्चतम न्यायालय ने **जी. एम. टेंक** बनाम **गुजरात राज्य और अन्य**[1] वाले मामले में **कैप्टन एम. पॉल एंथनी** बनाम **भारत गोल्ड माइंस लि. और एक अन्य**[2] वाले मामले में की विधिक स्थिति को दोहराते हुए, इस प्रकार अभिनिर्धारित किया है :–

"इस मामले में, विभागीय कार्यवाहियां और दाण्डिक मामला एक जैसे तथ्यों पर आधारित है और अपीलार्थी के विरुद्ध विभागीय

---

[1] (2006) 5 एस. सी. सी. 446.

[2] (1999) 3 एस. सी. सी. 679 = ए. आई. आर. 1999 एस. सी. 1416.

मामले में आरोप तथा दाण्डिक न्यायालय के समक्ष आरोप एक जैसे ही हैं ।

यह कोई साक्ष्य रहित मामला नहीं है । अपीलार्थी के विरुद्ध यह अभिनिर्धारित करने के लिए कोई भी साक्ष्य नहीं है कि अपीलार्थी विधिविरुद्ध पारितोषण के द्वारा आय से अधिक धनराशि एकत्रित करने का दोषी है । जांच अधिकारी द्वारा केवल अन्वेषण अधिकारी और अन्य विभागीय साक्षियों की परीक्षा की गई थी जिनके कथनों का अवलंब लेने के पश्चात् उसने यह निष्कर्ष निकाला कि अपीलार्थी के विरुद्ध आरोप सिद्ध हो गए हैं । दाण्डिक मामले में भी इन्हीं साक्षियों की परीक्षा कराई गई थी और दाण्डिक न्यायालय ने परीक्षा करने के पश्चात् यह निष्कर्ष निकाला कि अभियोजन पक्ष युक्तियुक्त संदेह के परे अपीलार्थी के विरुद्ध अभिकथित दोषसिद्ध नहीं कर सका है और अपने न्यायिक निर्णय द्वारा अपीलार्थी को दोषमुक्त करते हुए यह निष्कर्ष निकाला कि आरोप साबित नहीं हुआ है । न्यायिक निर्णय नियमित विचारण और विपक्ष को सुनने के बाद दिया गया था । इन परिस्थितियों के अधीन, यह अन्यायपूर्ण और अऋजु होगा कि विभागीय कार्यवाहियों में अभिलिखित निष्कर्षों की अनदेखी की जाए ।

अतः चूंकि तथ्य और विभागीय तथा दाण्डिक कार्यवाहियों में तथ्य और साक्ष्य एक जैसे हैं और उसमें कोई भिन्नता नहीं है इसलिए अपीलार्थी सफल होना चाहिए । निष्कर्ष के आधार पर सबूत के भार के आधार पर विभागीय और दाण्डिक कार्यवाहियों के बीच जो प्रायिक भिन्नता साबित की गई है वह इस मामले में लागू नहीं होती । हालांकि विभागीय जांच में अभिलिखित निष्कर्ष निचले न्यायालय द्वारा विधिमान्य पाए गए थे, क्योंकि कार्यवाहियों के लंबित रहने के दौरान कर्मचारी को सम्मान के साथ दोषमुक्त किया गया था जहां पदच्युति को आक्षेपित किया गया था जिसका उल्लेख किया जाना आवश्यक था इसलिए **पॉल एंथनी** (1999) 3 एस. सी. सी. 679 = ए. आई. आर. 1999 एस. सी. 1416 वाला मामला लागू होगा, ।"

(iv) उच्चतम न्यायालय ने **उत्तरांचल राज्य और अन्य** बनाम **खड़क सिंह**[1] वाले मामले में यह अभिनिर्धारित किया कि जांच मात्र औपचारिकता

[1] (2008) 8 एस. सी. सी. 236.

नहीं होनी चाहिए । इस मामले में इस प्रकार मत व्यक्त किया गया :–

> "निम्नलिखित विभागीय जाचों के संचालन के संबंध में कतिपय आधारभूत सिद्धांत इस प्रकार हैं – (i) जांच सद्भाविक रूप से होनी चाहिए और यह सुनिश्चित करने के लिए सावधानी बरतनी चाहिए कि जांचें मात्र औरचारिकताएं न बन जाएं; (ii) यदि कोई अधिकारी ऐसी किसी घटना का साक्षी है जो जांच का विषय है या जांच किसी अधिकारी के रिपोर्ट पर आरंभ की गई हो तो ऋजुता को ध्यान में रखते हुए उसे जांच अधिकारी नहीं होना चाहिए । यदि जांच अधिकारी के नियुक्ति के बाद ऐसी स्थिति सामने आती है तो जांच के दौरान, यह सुनिश्चित करने के लिए कार्रवाई की जानी चाहिए कि जांच का कार्य किसी दूसरे अधिकारी को दिया जाए; (iii) किसी जांच में नियोजक/विभाग, आरोपित कर्मकार/अपचारी के विरुद्ध प्रथमतः साक्ष्य के लिए कार्रवाई की जानी चाहिए और अपचारी नियोजक को साक्षियों की प्रतिपरीक्षा करने का अवसर दिया जाना चाहिए । केवल उसके बाद ही कर्मकार/अपचारी से यह पूछा जाए कि क्या वह कोई साक्ष्य पेश करना चाहता है और उसके विरुद्ध प्रस्तुत साक्ष्य के बारे में कोई स्पष्टीकरण देना चाहता है; (iv) जांच रिपोर्ट प्राप्त होने पर, कार्यवाही करने से पहले भी इसमें जांच रिपोर्ट की प्रति प्रदाय करने के लिए अनुशासनात्मक प्राधिकारी/दण्ड देने वाला प्राधिकारी इस बात के लिए आबद्ध है कि वह जांच रिपोर्ट की प्रति और जांच अधिकारी द्वारा अवलंब ली गई सभी संबंधित सामग्री की प्रतियां अपचारी को संदत्त करे जिससे कि वह अपना पक्ष, यदि कोई हो, प्रस्तुत करने के लिए समर्थ हो सके ।"

21. इस संबंध में प्रत्यर्थियों के विद्वान् काउंसेल द्वारा अवलंब लिए गए विधिक मामलों का निर्देश किया जा सकता है :–

(i) **बी. एस. सिंघवी** बनाम **यूनाइटेड कॉमर्शियल बैंक और एक अन्य**[1]

(ii) **कैप्टन एम. पॉल एंथनी** बनाम **भारत गोल्ड माइंस लि. और एक अन्य**[2]

(iii) **इंडियन ओवरसीज बैंक, अन्ना सलाई और अन्य** बनाम **पी. गणेशन और अन्य**[3]

---

[1] 1982 आर. एल. आर. 635.

[2] (1999) 3 एस. सी. सी. 679 = ए. आई. आर. 1999 एस. सी. 1416.

[3] (2008) 1 एस. सी. सी. 650.

(iv) **इलाहाबाद जिला को-ऑपरेटिव बैंक लि., इलाहाबाद** बनाम **विद्या वारिध मिश्रा**[1]

(v) **अर्जुन सिंह पटेल** बनाम **राजस्थान राज्य और अन्य**[2]

22. इस न्यायालय ने ऊपर यह भी उल्लेख किया है कि प्रत्यर्थियों के विद्वान् काउंसेल द्वारा अवलंब लिए गए मामलों में इस विधिक स्थिति पर कोई विवाद नहीं है कि दो प्रकार की कार्यवाहियां एक साथ की जा सकती हैं भले ही उनकी परिधि भिन्न हो किन्तु इस प्रतिपादना के विरुद्ध बाधाएं हो सकती हैं जैसी कि ऊपर चर्चा की गई है ।

23. अतः इस न्यायालय का यह निष्कर्ष है कि याची के विरुद्ध पारित, जिसकी दुर्भाग्य से रिट याचिका के लंबित रहने के दौरान मृत्यु हो गई थी, अनिवार्य सेवानिवृत्ति के दण्ड का आदेश अभिखंडित और अपास्त किए जाने योग्य है ।

24. तद्नुसार, रिट याचिका मंजूर की जाती है और तारीख 9 मई, 1984 का आक्षेपित अनिवार्य सेवानिवृत्ति का आदेश और तारीख 1 जुलाई, 1997 का अपीली आदेश अभिखण्डित और अपास्त किया जाता है । याची स्वयं अपने निलंबन की तारीख से सेवा में मीमांसात्मक रूप से बहाल समझा जाएगा जिसे तारीख 9 मई, 1984 को अनिवार्य सेवानिवृत्ति की तारीख से उसकी अधिवर्षिता की तारीख तक सेवा में समझा जाएगा तथापि, उसे कोई वित्तीय लाभ नहीं दिया जाएगा क्योंकि उसने वास्तविक रूप से उक्त अवधि के दौरान कार्य नहीं किया । तथापि, याची के विधिक प्रतिनिधि पारिणामिक पेंशन और अन्य सेवानिवृत्ति संबंधी लाभों के हकदार होंगे जो वेतन नियतन, चयन स्केल, मीमांसात्मक प्रोन्नति इत्यादि के रूप में संगणित किए जाएंगे और जो याची को इन आदेशों के अभिखंडन के कारण मिलते और ये फायदे आज से छह मास के भीतर संदत्त किए जाएंगे । खर्चों के बारे में कोई आदेश नहीं किया जाता है ।

रिट याचिका मंजूर की गई ।

मही./मह.

---

[1] (2004) 6 एस. सी. सी. 482.

[2] 2002 डब्ल्यू. एल. सी. (3) 62.

कालू राम

बनाम

राजस्थान राज्य और अन्य

तारीख 7 मार्च, 2014

न्यायमूर्ति (डा.) विनीत कोठारी

संविधान, 1950 – अनुच्छेद 226 – ठेकेदार द्वारा कार्य पूरा न करने के कारण सरकार को वित्तीय हानि – अधीक्षण इंजीनियर के विरुद्ध कार्यवाही – दंड – पेंशन प्राप्त करने के समय पूर्व दंड पर्याप्त न होने के आधार पर दंड में वृद्धि करते हुए वेतनवृद्धि में कमी – रिट याचिका – ऐसा दंड नैसर्गिक न्याय के सिद्धांत के अनुसार नहीं कहा जा सकता – आदेश अपास्त किए जाने योग्य है ।

याची ने जिसे अधीक्षण इंजीनियर के रूप में प्रत्यर्थी-आई.जी.एन.पी. की सेवाओं से सेवानिवृत्त कर दिया गया है, महामहिम राज्यपाल की ओर से राजस्थान सरकार के उप सचिव द्वारा तारीख 2 जून, 2011 को पारित आक्षेपित आदेश (उपाबंध 8) से व्यथित होकर इस न्यायालय में यह रिट याचिका फाइल की है । रिट याचिका मंजूर करते हुए,

अभिनिर्धारित – पक्षकारों के विद्वान् काउंसेलों को सुनने और तारीख 2 जून, 2001 के आक्षेपित आदेश में दिए गए कारणों का सावधानी पूर्वक परिशीलन करने पर इस न्यायालय का यह समाधान हो गया है कि आक्षेपित आदेश से यह उपदर्शित होता है कि याची द्वारा दिए गए सुसंगत स्पष्टीकरण पर विवेक का प्रयोग नहीं किया गया है जैसा कि आदेश में उद्धृत है । यदि दलील के लिए यह मान लिया जाए कि याची ने वर्ष 1975 में सहायक इंजीनियर के रूप में कार्य किया था और उसने अपने कर्तव्यों के निर्वहन में केवल एक अधीक्षणीय उपेक्षा कारित की थी, तथापि, इस न्यायालय के समक्ष पेश किए ऐसे किसी अभिलेख के अभाव में कि राज्य को पहुंची वित्तीय हानि याची या अन्य दोषी अधिकारियों से वसूल कर ली गई थी, यह नहीं कहा जा सकता कि उसकी सेवानिवृत्ति के बाद दो वर्ष की अवधि के लिए 25 प्रतिशत तक पेंशन रोकने के लिए एक ग्रेड वेतनवृद्धि को रोकने के दण्ड को बढ़ाने के लिए विधिमान्य आधार है ।

आक्षेपित आदेश द्वारा लगाया गया दण्ड न केवल पूर्णतया अननुपातिक है अपितु दो वर्ष की अवधि के लिए 25 प्रतिशत तक याची की जो अधीक्षण इंजीनियर के उच्च पद से वर्ष 2008 में प्रत्यर्थियों की सेवाओं से सेवानिवृत्त हुआ था, पेंशन रोकने के लिए एक ग्रेड वेतनवृद्धि को रोकने का दण्ड बढ़ाने के लिए किसी भी प्रकार का कोई कारण प्रतीत नहीं होता है । इसलिए आक्षेपित आदेश नैसर्गिक न्याय के सिद्धांत की अपेक्षा को पूरा नहीं करता है और उत्तर पर विचार किए बिना मात्र उक्त आक्षेपित आदेश में स्पष्टीकरण उद्धृत करना और उसके प्रतिकूल निष्कर्ष देना तारीख 2 जून, 2011 के आक्षेपित आदेश को अभिखण्डित करने के लिए पर्याप्त है । इसके अलावा भी प्रत्यर्थियों के विद्वान् काउंसेल द्वारा इस न्यायालय के समक्ष भी कोई कारण इस बारे में स्पष्ट नहीं किया गया है कि वर्तमान मामले में 25 वर्ष से अधिक के लम्बे अन्तराल के बाद जांच क्यों अवधारित की गई थी । तद्नुसार, याची द्वारा फाइल की गई वर्तमान रिट याचिका मंजूर किए जाने योग्य है और तारीख 2 जून, 2011 का आक्षेपित आदेश अभिखण्डित किए जाने योग्य और अपास्त किए जाने योग्य है । तद्नुसार, वर्तमान रिट याचिका मंजूर की जाती है । (पैरा 5, 6 और 7)

आरंभिक (सिविल) रिट अधिकारिता : 2011 की एस. बी. सिविल रिट याचिका सं. 6692.

संविधान, 1950 के अनुच्छेद 226 के अधीन सिविल रिट याचिका ।

याची की ओर से श्री राजेश के. भारद्वाज

प्रत्यर्थियों की ओर से सुश्री कुसुम राव, अपर अधिवक्ता

न्यायमूर्ति (डा.) विनीत कोठारी – याची ने जिसे अधीक्षण इंजीनियर के रूप में प्रत्यर्थी-आई.जी.एन.पी. की सेवाओं से सेवानिवृत्त कर दिया गया है, महामहिम राज्यपाल की ओर से राजस्थान सरकार के उप सचिव द्वारा तारीख 2 जून, 2011 को पारित आक्षेपित आदेश (उपाबंध 8) से व्यथित होकर इस न्यायालय में यह रिट याचिका फाइल की है, जिसके द्वारा उसे दो वर्ष की अवधि के लिए 25 प्रतिशत तक पेंशन को रोकने के लिए एक ग्रेड वेतनवृद्धि को रोकने का दण्ड बढ़ाया गया है । याची वर्ष 2008 में सेवानिवृत्त हुआ था । तारीख 2 जून, 2001 के आक्षेपित आदेश (उपाबंध-8) में दिया गया कारण नीचे उद्धृत है :–

> "महामहिम राज्यपाल महोदय ने प्राप्त याचिका के संबंध में निर्देशित किया कि राज्य सरकार द्वारा राजस्थान लोक सेवा आयोग

के परामर्श उपरांत श्री कालू राम को उनके वर्तमान वेतनमान में वेतन एक स्टेज नीचे किए जाने के दण्ड से दण्डित किया गया है, किन्तु श्री कालू राम को दिया गया उक्त दण्ड उनके द्वारा वर्ष 1973-75 की अवधि में राज्य सरकार को पहुंचाई गई रुपए 1,20,377/- की हानि की वसूली के समानुपातिक प्रतीत नहीं होता है । श्री कालू राम को दिए गए उक्त दण्ड में, राज्य सरकार को तत्समय पहुंचाई गई हानि के समानुपातिक वृद्धि किए जाने पर विचार किया जाना चाहिए । राज्य सरकार को उक्तानुसार पुनः आवश्यक कार्यवाही कर तथा उस पर राजस्थान लोक सेवा आयोग की राय प्राप्त करने हेतु प्रतिपेषित किया है ।

महामहिम राज्यपाल महोदय के निर्देशों की पालना में श्री कालू राम को समसंख्यांक पत्र दिनांक 28.7.2010 द्वारा नोटिस जारी कर अभ्यावेदन प्रस्तुत करने का अवसर प्रदान किया गया । श्री कालू राम ने अभ्यावेदन दिनांक 9.8.2010 को प्रस्तुत किया जिसमें उल्लेख किया कि –

1. प्रार्थी के 1/75 में स्थानांतरण के बाद ठेकेदार ने चालू कार्य 7/75 में अपूर्ण छोड़ा, उस समय किशनराज माथुर कार्यरत थे । अतः प्रार्थी निर्दोष है । इगानप विभाग ने अपने पत्रांक 560 दिनांक 5.7.2008 से स्पष्ट किया है ।

2. विभाग ने अपने पत्रांक 56 दिनांक 8.1.2010 से स्पष्ट किया है कि राज्य सरकार को हानि ठेकदार के कार्य अपूर्ण छोड़े जाने के कारण हुई है और ठेकेदार ने चालू कार्य प्रार्थी के कार्यकाल में अपूर्ण छोड़ा था ।

3. ठेकेदार के विरुद्ध पी. डी. आर. के तहत वसूली प्रकरण प्रगति पर है । जिससे प्रार्थी को दण्डित करना न्यायोचित नहीं है ।

4. प्रार्थी 2/73 से 25.6.1973 तक अन्य विभाग में कार्यरत था । इसके अलावा उपखण्ड चतुर्थ श्री मोहनगढ़ 31.7.1974 को समाप्त हो गया था ।

5. 6-7 वर्षों के अन्तराल के बाद कार्य की मात्रा में प्राकृतिक आपदाओं के कारण कमी आना स्वाभाविक है । इसके लिए केवल ठेकेदार ही उत्तरदायी होता है ।

6. प्रार्थी द्वारा कोई रनिंग बिल अधिक भुगतान के लिए सत्यापित नहीं किया गया ।

7. कनिष्ठ अभियन्ता द्वारा कार्य मापकर माप पुस्तिका में इन्द्राज किए गए रनिंग बिलों की सहायक अभियन्ता द्वारा ठेकेदार को भुगतान के लिए सत्यापित कर अधिशासी अभियन्ता को प्रस्तुत किया जाता है जहां तकनीकी व वित्तीय परीक्षण के उपरान्त किए गए भुगतान के लिए अधिशासी अभियन्ता ही उत्तरदायी होता है ।

श्री कालू राम द्वारा प्रस्तुत अभ्यावेदन का प्रकरण से संबंधित अभिलेख के साथ परीक्षण किया । श्री कालू राम द्वारा प्रस्तुत अभ्यावेदन में अंकित तथ्य स्वीकार किए जाने योग्य नहीं हैं । उनके द्वारा उपरोक्त सभी तथ्य विभागीय जांच के दौरान प्रस्तुत अभ्यावेदन में उल्लिखित किए गए हैं । जिसका समुचित परीक्षण किए जाने पर उनके विरुद्ध लगाया गया आरोप प्रमाणित पाए जाने पर ही उन्हें दण्डित किया गया है ।

श्री कालू राम, तत्कालीन सहायक अभियन्ता (हाल सेवानिवृत्त) को पूर्व में दिए गए उनके वर्तमान वेतनमान में वेतन एक स्टेज नीचे किए जाने के दण्ड के स्थान पर राजस्थान पेंशन नियम, 1966 के नियम-7 में निहित प्रावधानानुसार श्री कालू राम की 25 प्रतिशत पेंशन दो वर्ष के लिए रोके जाने का राज्य सरकार द्वारा अनन्तिम निर्णय लिया जाकर प्रकरण इस विभाग के समसंख्यांक पत्र दिनांक 1.2.2011 द्वारा राजस्थान लोक सेवा आयोग, अजमेर ने अपने पत्र क्रमांक प. 1(75)विज्ञा/रिव्यू/2009-10/1067 दिनांक 24.3.2011 द्वारा राज्य सरकार द्वारा प्रस्तावित दण्ड से अपनी सहमति प्रदान की है ।

अतः महामहिम राज्यपाल महोदय श्री कालू राम, तत्कालीन सहायक अभियन्ता (हाल सेवानिवृत्त अभियन्ता) को पूर्व में दिए गए उनके वर्तमान वेतनमान में वेतन एक स्टेज नीचे किए जाने के दण्ड के स्थान पर राजस्थान पेंशन नियम, 1996 के नियम-7 में निहित प्रावधानानुसार श्री कालू राम की 25 प्रतिशत पेंशन दो वर्ष के लिए रोके जाने के दण्ड से दण्डित करने के एतद्द्वारा आदेश प्रदान करते हैं ।

राज्यपाल के आदेश से,
ह./-
शासन उप सचिव"

2. याची की ओर से विद्वान् काउंसेल श्री राजेश के. भारद्वाज, ने यह दलील दी है कि याची द्वारा उचित स्पष्टीकरण दिया गया था कि वह ठेकेदार द्वारा निष्पादित उक्त संविदा के लिए सीधे तौर पर उत्तरदायी नहीं है चूंकि उसने प्रतिनियुक्ति पर और जनवरी, 1975 की अवधि में अनेक विभागों में कार्य किया था, तथापि, इस पहलू पर विचार नहीं किया गया है और केवल इस आधार पर कि राज्य सरकार को पहुंची वित्तीय हानि के कारण और उक्त ठेकेदार द्वारा कार्य को अधूरा छोड़ने के कारण 1,20,377/- रुपए की हानि हुई जिसके लिए ठेकेदार के विरुद्ध पी. डी. आर. वसूली भी की जानी थी, प्रत्यर्थी-राज्य ने यह पाया कि अनुशासनात्मक प्राधिकारी द्वारा याची पर लगाया गया दण्ड एक ग्रेड वेतनवृद्धि रोकने का था, पर्याप्त नहीं था और इसे तारीख 2 जून, 2011 के आक्षेपित आदेश द्वारा बढ़ा दिया गया था, और जिसे वर्ष 2008 में उसकी सेवानिवृत्ति के बाद दो वर्ष की अवधि के लिए 25 प्रतिशत तक पेंशन रोकने के लिए बढ़ाया गया था ।

3. इसके प्रतिकूल, विद्वान् अपर सरकारी काउंसेल सुश्री कुसुम राव ने यह दलील दी है कि मामले में विस्तृत जांच की गई थी, जिसमें याची भी शामिल था और चूंकि उक्त ठेकेदार द्वारा कार्य अधूरा छोड़ने के कारण वित्तीय हानि हुई थी, इसलिए राज्य को 1,20,377/- रुपए की हानि हुई थी और इसलिए, राज्य के महामहिम राज्यपाल ने अपनी शक्ति में जिसके लिए वह राजस्थान सिविल सेवा (सी. सी. ए.) नियम, 1958 के नियम 34 के अधीन हकदार था, ऐसे दण्ड को बढ़ाने के लिए दंड का पुनर्विलोकन किया जैसा कि उनके द्वारा किया गया है ।

4. उन्होंने यह दलील दी है कि चूंकि याची जांच में शामिल था और इसलिए याची अब यह शिकायत नहीं कर सकता कि वर्ष 1975 में बहुत पहले किए गए अभिकथित कार्य की अनेक वर्षों के पश्चात् वर्ष 2007 में जांच नहीं की जा सकती है ।

5. पक्षकारों के विद्वान् काउंसेलों को सुनने और तारीख 2 जून, 2001 के आक्षेपित आदेश में दिए गए कारणों का सावधानी पूर्वक परिशीलन करने पर इस न्यायालय का यह समाधान हो गया है कि आक्षेपित आदेश से यह उपदर्शित होता है कि याची द्वारा दिए गए सुसंगत स्पष्टीकरण में विवेक का प्रयोग नहीं किया गया है जैसा कि आदेश में उद्धृत किया गया है । यदि दलील के लिए यह मान लिया जाए कि याची ने वर्ष 1975 में सहायक इंजीनियर के रूप में कार्य किया था और उसने अपने कर्तव्यों के निर्वहन में केवल एक अधीक्षणीय उपेक्षा कारित की थी,

तथापि, इस न्यायालय के समक्ष पेश किए ऐसे किसी अभिलेख के अभाव में कि राज्य को पहुंची वित्तीय हानि याची या अन्य दोषी अधिकारियों से वसूल कर ली गई थी, यह नहीं कहा जा सकता कि उसकी सेवानिवृत्ति के बाद दो वर्ष की अवधि के लिए 25 प्रतिशत तक पेंशन रोकने के लिए एक ग्रेड वेतनवृद्धि को रोकने के दण्ड को बढ़ाने के लिए विधिमान्य आधार था ।

6. आक्षेपित आदेश द्वारा लगाया गया दण्ड न केवल पूर्णतया अननुपातिक है अपितु दो वर्ष की अवधि के लिए 25 प्रतिशत तक याची की जो अधीक्षण इंजीनियर के उच्च पद से वर्ष 2008 में प्रत्यर्थियों की सेवाओं से सेवानिवृत्त हुआ था, पेंशन रोकने के लिए एक ग्रेड वेतनवृद्धि को रोकने का दण्ड बढ़ाने के लिए किसी भी प्रकार का कोई कारण प्रतीत नहीं होता है । इसलिए आक्षेपित आदेश नैसर्गिक न्याय के सिद्धांत की अपेक्षा को पूरा नहीं करता है और उत्तर पर विचार किए बिना मात्र उक्त आक्षेपित आदेश में स्पष्टीकरण उद्धृत करना और उसके प्रतिकूल निष्कर्ष देना तारीख 2 जून, 2011 के आक्षेपित आदेश को अभिखण्डित करने के लिए पर्याप्त है । इसके अलावा भी प्रत्यर्थियों के विद्वान् काउंसेल द्वारा इस न्यायालय के समक्ष भी कोई कारण इस बारे में स्पष्ट नहीं किया गया है कि वर्तमान मामले में 25 वर्ष से अधिक के लम्बे अन्तराल के बाद जांच क्यों अवधारित की गई थी ।

7. तद्नुसार, याची द्वारा फाइल की गई वर्तमान रिट याचिका मंजूर किए जाने योग्य है और तारीख 2 जून, 2011 का आक्षेपित आदेश अभिखण्डित किए जाने योग्य और अपास्त किए जाने योग्य है । तद्नुसार, वर्तमान रिट याचिका मंजूर की जाती है । तारीख 2 जून, 2011 का आक्षेपित आदेश अभिखण्डित और अपास्त किया जाता है । दो वर्ष के लिए 25 प्रतिशत रोकी गई पेंशन याची को तुरन्त संदत्त की जाए और यदि उसे आज की तारीख से तीन मास की अवधि के भीतर संदत्त नहीं किया जाता है तो उसे 9 प्रतिशत वार्षिक ब्याज की दर के साथ देना होगा । इस आदेश की एक प्रति संबंधित पक्षकारों को तुरन्त भेजी जाए ।

रिट याचिका मंजूर की गई ।

मही./मह.

———

दयानंद शर्मा

बनाम

राजस्थान राज्य और अन्य

तारीख 11 मार्च, 2014

न्यायमूर्ति (डा.) विनीत कोठारी

राजस्थान सिविल सेवा (वर्गीकरण, नियंत्रण और अपील) नियम, 1958 – नियम 14(3) और 14(2) – कर्मचारी द्वारा 3,97,636/- रुपए का गबन – जांच के दौरान वसूली का आदेश – चुनौती – पश्चात्वर्ती संबंधित आदेश को रिट याचिका में आक्षेपित न किया जाना – अनुशासनिक प्राधिकारी द्वारा पारित आदेश के विरुद्ध अपील ग्राह्य होना – रिट याचिका – ऐसे किसी आदेश में जो नियमों के अधीन अपीलीय हो, उच्च न्यायालय रिट याचिका में हस्तक्षेप नहीं कर सकता – तथापि, कर्मचारी समुचित न्यायालय या प्राधिकारी के समक्ष अपील फाइल कर सकता है ।

याची ने वर्तमान रिट याचिका याची से 3,97,363.25 रुपए की राशि वसूलने के लिए जिला शिक्षा अधिकारी प्राइमरी शिक्षा, चुरू द्वारा प्रधानाचार्य, जिला शिक्षा और प्रशिक्षण केन्द्र, चुरू को निदेश देने वाले तारीख 31 अगस्त, 2010 के आक्षेपित आदेश (उपाबंध 10) के विरुद्ध फाइल की है । रिट याचिका खारिज करते हुए,

अभिनिर्धारित – तारीख 1 अक्तूबर, 2012 के अनुवर्ती आदेश (उपाबंध आर/1) को वर्तमान रिट याचिका में चुनौती नहीं दी गई है, इसके अतिरिक्त यह भी उल्लेखनीय है कि अनुशासनात्मक प्राधिकारी द्वारा पारित किया गया ऐसा आदेश राजस्थान सिविल सेवा (वर्गीकरण, नियंत्रण और अपील) नियम, 1958 के अनुसार एक अपीलीय आदेश है, इसलिए वर्तमान रिट याचिका निष्फल हो जाती है और तद्नुसार उसे खारिज किया जाता है । याची विधि के अनुसार समुचित फोरम के समक्ष अनुशासनात्मक प्राधिकारी द्वारा तारीख 1.10.2012 को पारित उक्त आदेश को आक्षेपित करने के लिए स्वतंत्र है । (पैरा 4)

आरंभिक (सिविल) रिट अधिकारिता : 2011 की एस. बी. सिविल रिट याचिका सं. 6502.

संविधान, 1950 के अनुच्छेद 226 के अधीन सिविल रिट याचिका ।

याची की ओर से श्री कुलदीप माथुर

प्रत्यर्थी की ओर से श्रीमती आर. आर. कंवर

न्यायमूर्ति (डा.) विनीत कोठारी – याची ने वर्तमान रिट याचिका याची से 3,97,363.25 रुपए की राशि वसूलने के लिए जिला शिक्षा अधिकारी प्राइमरी शिक्षा, चुरू द्वारा प्रधानाचार्य, जिला शिक्षा और प्रशिक्षण केन्द्र, चुरू को निदेश देने वाले तारीख 31 अगस्त, 2010 के आक्षेपित आदेश (उपाबंध 10) के विरुद्ध फाइल की है, याची प्रधानाचार्य, जिला शिक्षा और प्रशिक्षण केन्द्र, चुरू के कार्यालय में अवर श्रेणी लिपिक के रूप में कार्य कर रहा था ।

2. वर्तमान रिट याचिका इस आधार पर फाइल की गई है कि चूंकि याची से उक्त वसूली किसी जांच के बिना और जांच के लंबित रहने के दौरान की जा रही थी, इसलिए इसे चुनौती दी गई है ।

3. प्रत्यर्थियों ने रिट याचिका के उत्तर के साथ-साथ तारीख 1 अक्तूबर, 2012 के आदेश (उपाबंध आर/1) की प्रति प्रस्तुत की है, जिसका प्रवर्तनीय भाग इस प्रकार है :–

> "विचाराधीन विभागीय जांच में कार्मिक को दिए गए आरोप पत्र एवं आरोप पत्र में जांच अधिकारी द्वारा दी गई जांच रिपोर्ट एवं निदेशालय प्रारंभिक शिक्षा, बीकानेर द्वारा प्रकरण में की जाने वाली कार्यवाही के निर्देश दिनांक 3.3.2008 एवं पत्रावली में उपलब्ध रिकार्ड का गहनता से अध्ययन किया हालांकि वर्तमान में कार्मिक को गबन के प्रकरण में फौजदारी न्यायालय द्वारा दोषमुक्त कर दिया है परन्तु जांच अधिकारी द्वारा कार्मिक को गबन के प्रकरण में दोषी माना है अतः निदेशालय द्वारा दिए गए निर्देश एवं कार्मिक को फौजदारी प्रकरण में हुए दोषमुक्ति के आदेश के मध्यनजर वक्त जांच निम्न प्रकार से आदेश जारी किए जाते हैं –
>
> 1. राजस्थान सिविल सेवा (वर्गीकरण, नियंत्रण और अपील) नियम, 1958 के नियम 14(3) के अंतर्गत सरकार को हुई आर्थिक हानि के लिए गबन राशि रुपए 3,97,636/- (रुपए

तीन लाख सतानवे हजार छः सौ छत्तीस मात्र) श्री दयानन्द, कनिष्ठ लिपिक, डाइट, चुरू से प्रतिमाह देय वेतन से जी. एफ. एंड आर. नियमान्तर्गत कटौती कर वसूल की जाए ।

2. कार्मिक विभाग के परिपत्र दिनांक 31.12.1996 के पैरा संख्या 7(4) में दिए गए निर्देशों के अनुसार कार्मिक के निलम्बन/पदच्युति आदि तारीख तथा उसके दौरान ड्यूटी पर पुनः उपस्थिति होने के दिनांक की बीच की कालावधि के बारे में राजस्थान सेवा नियमों के नियम 54 के अनुसार कार्मिक की बहाली की तारीख तक की कालावधि के लिए पूर्ण वेतन एवं भत्ते देय होंगे और उक्त कालावधि के समस्त प्रयोजन के लिए ड्यूटी के रूप में संगणित मानी जाएगी ।

3. राजस्थान सिविल सेवा (वर्गीकरण, नियंत्रण एवं अपील) 1958 के नियम 14 (2) के अनुसार कार्मिक की दो वेतन वृद्धियां संचयी प्रभाव से रोकी जाने के आदेश दिए जाते हैं ।

हस्ताक्षर

जिला शिक्षा अधिकारी

प्रारंभिक शिक्षा, चुरू'

4. तारीख 1 अक्तूबर, 2012 के अनुवर्ती आदेश (उपाबंध आर/1) को वर्तमान रिट याचिका में चुनौती नहीं दी गई है, इसके अतिरिक्त यह भी उल्लेखनीय है कि अनुशासनात्मक प्राधिकारी द्वारा पारित किया गया ऐसा आदेश राजस्थान सिविल सेवा (वर्गीकरण, नियंत्रण और अपील) नियम, 1958 के अनुसार एक अपीलीय आदेश है, इसलिए वर्तमान रिट याचिका निष्फल हो जाती है और तद्नुसार इसे खारिज किया जाता है । याची विधि के अनुसार समुचित फोरम के समक्ष अनुशासनात्मक प्राधिकारी द्वारा तारीख 1.10.2012 को पारित उक्त आदेश को आक्षेपित करने के लिए स्वतंत्र है । खर्चों के लिए कोई आदेश नहीं किया जाता है । इस आदेश की प्रति संबंधित पक्षकारों को तुरन्त भेजी जाए ।

रिट याचिका खारिज की गई ।

मही./मह.

धर्मा नन्द

बनाम

हिमाचल प्रदेश वित्त निगम और अन्य

तारीख 27 फरवरी, 2013

न्यायमूर्ति वी. के. शर्मा

संविधान, 1950 – अनुच्छेद 226 – रिट याचिका – सरकारी सेवक की वार्षिक गोपनीय रिपोर्टों से औसत मानक से कम अंक प्राप्त होना – कर्मचारी को ऐसी गोपनीय रिपोर्टें संसूचित न किया जाना – विभागीय प्रोन्नति समिति द्वारा प्रोन्नति करने से इनकार करना – जहां विभागीय प्रोन्नति समिति द्वारा किसी सरकारी सेवक की प्रोन्नति करने से इस आधार पर इनकार किया जाता है कि ऐसे सरकारी सेवक की कुछ गोपनीय रिपोर्टों में औसत मानक से कम अंक प्राप्त हुए हैं वहां ऐसी रिपोर्टें सरकारी सेवक को संसूचित न किए जाने की स्थिति में रिपोर्टें संसूचित करके संपूर्ण सेवा की रिपोर्टों पर विचार किए जाने का आदेश किया जा सकता है ।

वर्तमान मामले में, याची, जिसने प्रत्यर्थी सं. 1-निगम के नियोजन में वर्ष 1992 में कनिष्ठ लिपिक के रूप में पद ग्रहण किया था, वर्ष 1997 में कनिष्ठ सहायक के रूप में प्रोन्नत हुआ था और इसके पश्चात् तारीख 11 जून, 2002 को ज्येष्ठ सहायक के रूप में प्रोन्नत हुआ और उसे इसी रूप में वेतनमान रु. 5800-9200 में पुष्ट किया गया । इसके पश्चात्, तारीख 11 जून, 2002 से गणना करते हुए ज्येष्ठ सहायक के रूप में सेवा के सात वर्ष पूरे करने के कारण वह उच्चतर वेतनमान रु. 6400-10640 में पद के लिए अपनी उपयुक्तता के अध्यधीन हकदार हो गया था । तद्नुसार, प्राइवेट प्रत्यर्थी सं. 11 के साथ उक्त पद के लिए उसके नाम पर विचार किया गया था किन्तु, वर्ष 2004-05 से वर्ष 2008-09 के लिए उसकी वार्षिक गोपनीय रिपोर्टों के मूल्यांकन पर वह विभागीय प्रोन्नति समिति (डी. पी. सी.) जिसकी बैठक तारीख 15 जुलाई, 2009 को हुई थी, द्वारा उपयुक्त नहीं पाया गया था । इसके पश्चात्, डी. पी. सी. द्वारा उसके नाम पर प्राइवेट प्रत्यर्थी सं. 12 के साथ तारीख 18 नवम्बर, 2002 को आयोजित बैठक में पुनः विचार किया गया था, किन्तु वही परिणाम हुआ ।

इससे व्यथित होकर याची ने वर्तमान याचिका फाइल की । न्यायालय द्वारा याचिका मंजूर करते हुए,

अभिनिर्धारित – चूंकि स्वीकृततः सुसंगत अवधि (2004-05 से 2008-09) के लिए वार्षिक गोपनीय रिपोर्टों में की गई प्रविष्टियां, जो उचित/औसत थीं और जिनमें कतिपय "सलाहकारी" और "प्रतिकूल" टिप्पणियां भी अन्तर्विष्ट थीं, याची को संसूचित नहीं की गई थीं और जिनकी प्रतियां (संचयी रूप में उपाबंध पी-13) याची ने सूचना का अधिकार अधिनियम, 2005 के अधीन प्राप्त की थीं, याची को उच्चतर वेतनमान मंजूर करने से इनकार करने का कोई आधार प्रदान नहीं करतीं । अभिलेखों से यह प्रकट होता है कि याची ने प्रत्यर्थी-निगम के प्रबंध निदेशक के पास पूर्वोक्त वार्षिक गोपनीय रिपोर्टों का पुनर्विलोकन करने के लिए तारीख 1 अप्रैल, 2010 को एक अभ्यावेदन उपाबंध पी-14 प्रस्तुत किया था । तारीख 4 जून, 2010 की संसूचना उपाबंध पी-15 द्वारा याची को यह सूचित किया गया कि उसके द्वारा प्रस्तुत अभ्यावेदन को पुनर्विलोकन के लिए सक्षम प्राधिकारी के पास भेजा जा रहा है । तथापि, याची के विद्वान् काउंसेल ने यह निवेदन किया कि चूंकि विवादित वार्षिक गोपनीय रिपोर्टें वर्ष 2004-05 से 2008-09 की अवधि से संबंधित हैं, इसलिए वार्षिक गोपनीय रिपोर्टों को उसके कार्य और आचरण में कोई भी सुधार करने के लिए कोई अवसर नहीं बचा है क्योंकि इन वार्षिक गोपनीय रिपोर्टों से उसे कभी भी संसूचित नहीं किया गया और चूंकि देव दत्त वाले मामले में माननीय उच्चतम न्यायालय द्वारा अधिकथित विधि को ध्यान में रखते हुए इनका उसके अहित के लिए अवलंब नहीं लिया जा सकता इसलिए यह समीचीन और न्याय हित में है कि प्रत्यर्थी-निगम द्वारा उसके उच्चतर वेतनमान मंजूरी के दावे के लिए उसकी पूर्ववर्ती और पश्चात्वर्ती अवधि की वार्षिक गोपनीय रिपोर्टों को सम्मिलित करते हुए उसके सम्पूर्ण सेवा अभिलेख के आधार पर उसे उच्चतर वेतनमान देने के लिए प्रत्यर्थी-निगम द्वारा पुनः विचार किया जाए । जब एक बार वर्ष 2004-05 से 2008-09 की अवधि के लिए विवादित वार्षिक गोपनीय रिपोर्टें याची को संसूचित न किए जाने के कारण विचार में नहीं ली जाएंगीं तो उसे उच्चतर वेतनमान मंजूर करने के लिए उसके दावे पर पूर्ववर्ती और पश्चात्वर्ती वार्षिक गोपनीय रिपोर्टों को सम्मिलित करते हुए उसके सम्पूर्ण सेवा अभिलेख के आधार पर ही विचार किया जा सकता है और यदि वर्ष 2004-05 से 2008-09 की अवधि के लिए विवादित वार्षिक गोपनीय रिपोर्टों का प्रत्यर्थी-निगम द्वारा पुनर्विलोकन किया

जाता है तो उन्हें भी विचार में लिया जा सकता है । (पैरा 7, 8, 9 और 10)

निर्दिष्ट निर्णय

		पैरा
[2011]	(2011) 10 एस. सी. सी. 121 : **हरदेव सिंह** बनाम **भारत संघ और एक अन्य ;**	6
[2009]	(2009) 16 एस. सी. सी. 146 : **अभिजीत घोष दस्तीदार** बनाम **भारत संघ और अन्य ;**	5,7,9
[2008]	(2008) 8 एस. सी. सी. 725 : **देव दत्त** बनाम **भारत संघ और अन्य ;**	5,7
[2007]	(2007) 10 एस. सी. सी. 513 : **एस. बी. भट्टाचार्जी** बनाम **एस. डी. मजूमदार और अन्य ;**	6
[2007]	(2007) 14 एस. सी. सी. 641 : **भारत संघ और एक अन्य** बनाम **एस. के. गोयल और अन्य ;**	6
[2006]	2006 (3) एस. एल. आर. 46 : **ओम प्रकाश कन्डक्टर** बनाम **हरियाणा राज्य और अन्य ।**	6

आरम्भिक (सिविल) रिट अधिकारिता : 2010-बी की सिविल रिट याचिका सं. 3671.

संविधान, 1950 के अनुच्छेद 226 के अधीन रिट याचिका ।

याची की ओर से श्री सी. एन. सिंह, अधिवक्ता

प्रत्यर्थी सं. 1 से 10 की ओर से श्री अश्वनी के. शर्मा, अधिवक्ता

न्यायमूर्ति वी. के. शर्मा – याची, जिसने प्रत्यर्थी सं. 1-निगम के नियोजन में वर्ष 1992 में कनिष्ठ लिपिक के रूप में पद ग्रहण किया था, वर्ष 1997 में कनिष्ठ सहायक के रूप में प्रोन्नत हुआ था और इसके पश्चात् तारीख 11 जून, 2002 को ज्येष्ठ सहायक के रूप में प्रोन्नत हुआ और उसे इसी रूप में वेतनमान रु. 5800-9200 में पुष्ट किया गया । इसके पश्चात्, तारीख 11 जून, 2002 से गणना करते हुए ज्येष्ठ सहायक के रूप में सेवा के सात वर्ष पूरे करने के कारण वह उच्चतर वेतनमान

रु. 6400-10640 में पद के लिए अपनी उपयुक्तता के अध्यधीन हकदार हो गया था । तद्नुसार, प्राइवेट प्रत्यर्थी सं. 11 के साथ उक्त पद के लिए उसके नाम पर विचार किया गया था किन्तु, वर्ष 2004-05 से वर्ष 2008-09 के लिए उसकी वार्षिक गोपनीय रिपोर्टों के मूल्यांकन पर वह विभागीय प्रोन्नति समिति (डी. पी. सी.) जिसकी बैठक तारीख 15 जुलाई, 2009 को हुई थी, द्वारा उपयुक्त नहीं पाया गया था । इसके पश्चात्, डी. पी. सी. द्वारा उसके नाम पर प्राइवेट प्रत्यर्थी सं. 12 के साथ तारीख 18 नवम्बर, 2002 को आयोजित बैठक में पुनः विचार किया गया था, किन्तु वही परिणाम हुआ ।

2. इससे व्यथित होकर, याची ने मुख्य रूप से निम्नलिखित अनुरोध करते हुए, वर्तमान याचिका फाइल की :–

> "(i) तारीख 28 जुलाई, 2009 के आदेश अर्थात् उपाबंध पी-7 जिसके द्वारा उससे कनिष्ठ व्यक्ति श्री नन्द लाल (प्रत्यर्थी सं. 11) और उसके बाद तारीख 18 नवम्बर, 2009 की डी. पी. सी. की सिफारिश जिसके द्वारा प्रत्यर्थी सं. 12 को याची के ऊपर ज्येष्ठ सहायक के पद पर ग्रेड-I वेतनमान रु. 6400-10640 में वेतनमान मंजूर करने के लिए सिफारिश की गई है, को अभिखंडित करने के लिए उत्प्रेषण, परमादेश रिट या अन्य कोई समुचित रिट आदेश या निदेश जारी किया जाए ।
>
> (ii) तारीख 15 सितम्बर, 2009 के आदेश अर्थात् उपाबंध पी-10 जिसके द्वारा याची का तारीख 19 अगस्त, 2009 के अभ्यावेदन को नामंजूर कर दिया गया था, को अभिखंडित करने के लिए उत्प्रेषण, परमादेश रिट या अन्य कोई समुचित रिट आदेश या निदेश जारी किया जाए ।
>
> (iii) याची की वार्षिक गोपनीय रिपोर्टों या सभी आशयों और प्रयोजनों में की गई असंसूचित प्रतिकूल प्रविष्टियों पर विचार किए बिना देय तारीख से वेतनमान ग्रेड-I रु. 6400-10640 में ज्येष्ठ सहायक के पद पर समय वेतनमान प्रोन्नति मंजूर करने के लिए याची के मामले पर विचार करने और विभागीय प्रोन्नति समिति द्वारा पुनर्विलोकन के लिए प्रत्यर्थी को परमादेश की रिट जारी की जाए ।"

3. प्रत्यर्थी सं. 1 और 2 की ओर से याचिका का मुख्यतः इस आधार पर विरोध किया गया कि डी. पी. सी. ने "उपयुक्तता के न्यायनिर्णयन" के

लिए उसी प्रक्रिया का अनुपालन किया जैसा कि उच्चतर पद के लिए किसी कर्मचारी की प्रोन्नति के लिए किया जाता है । उपयुक्तता का निर्धारण पिछले पांच वर्षों के लिए संबंधित कर्मचारी की वार्षिक गोपनीय रिपोर्टों के ग्रेडेशन के आधार पर किया गया है और उसे "उत्कृष्ट", "बहुत अच्छा", "अच्छा" और "उचित/औसत" के रूप में प्रत्येक वर्ष के लिए पृथक्तः वर्गीकृत किया गया है । निर्धारण के प्रत्येक प्रकार के लिए 5, 4, 3 और 2 अंक होते हैं । इसके पश्चात् उन्हीं वर्षों की जिनके लिए गोपनीय रिपोर्ट विचारित की जाती है, संख्या द्वारा कुल अंकों को विभाजित करके औसत निकाला जाता है । उस कर्मचारी को जो 2.5 औसत अंक से कम अंक पाता है अयोग्य वर्गीकृत किया जाता है । यह भी कहा गया है कि डी. पी. सी. द्वारा विचारित याची की सभी चारों वार्षिक गोपनीय रिपोर्टों का निर्धारण "उचित" है और पांचवीं वार्षिक गोपनीय रिपोर्टों में सम्पूर्ण निर्धारण "औसत" था जिसका यह अर्थ है कि याची द्वारा अर्जित सम्पूर्ण औसत 2.5 प्रतिशत से कम था । चूंकि सुसंगत अनुदेशों के अनुसार उक्त वार्षिक गोपनीय रिपोर्टें प्रतिकूल नहीं थीं इसलिए, उन्हें याची को संसूचित किए जाने की आवश्यकता नहीं थी । इसलिए, याची द्वारा प्रतिकूल टिप्पणों को हटाने के लिए प्रस्तुत तारीख 19 नवम्बर, 2009 के अभ्यावेदन पर विचार किया जाना आवश्यक नहीं था ।

4. मैंने, पक्षकारों के विद्वान् काउंसेल को सुना और अभिलेखों का परिशीलन किया ।

5. **देव दत्त** बनाम **भारत संघ और अन्य**[1] तथा **अभिजीत घोष दस्तीदार** बनाम **भारत संघ और अन्य**[2] वाले मामलों में माननीय उच्चतम न्यायालय द्वारा अधिकथित विधि का अवलंब लेते हुए, याची की ओर से यह निवेदन किया गया है कि वे वार्षिक गोपनीय रिपोर्टें जिनके आधार पर उसे अभिकथित तौर पर उपयुक्त नहीं पाया गया था, याची को कभी भी संसूचित नहीं की गई थीं और इसलिए उसे उच्चतर वेतनमान मंजूर करने से इनकार करने के लिए उन्हें आधार नहीं बनाया जा सकता है ।

6. इसके विपरीत, प्रत्यर्थी-निगम की ओर से यह दलील दी गई है कि यह सुस्थिर विधिक प्रतिपादना है कि यद्यपि किसी कर्मचारी को प्रोन्नति के लिए विचार किए जाने का विधिक अधिकार प्राप्त होता है फिर

---

[1] (2008) 8 एस. सी. सी. 725.

[2] (2009) 16 एस. सी. सी. 146.

भी वह अधिकार के रूप में ऐसी प्रोन्नति का दावा नहीं कर सकता । याची, जिसे उच्चतर वेतनमान मंजूर करने के लिए उपयुक्त नहीं पाया गया था, विधितः कोई शिकायत नहीं कर सकता । इस संबंध में, **एस. बी. भट्टाचार्जी** बनाम **एस. डी. मजूमदार और अन्य**[1], **भारत संघ और एक अन्य** बनाम **एस. के. गोयल और अन्य**[2], **हरदेव सिंह** बनाम **भारत संघ और एक अन्य**[3] वाले मामलों में माननीय उच्चतम न्यायालय द्वारा अधिकथित विधि और **ओम प्रकाश कन्डक्टर** बनाम **हरियाणा राज्य और अन्य**[4] वाले मामलों में पंजाब और हरियाणा उच्च न्यायालय द्वारा अधिकथित विधि का अवलंब लिया गया है ।

7. चूंकि स्वीकृततः सुसंगत अवधि (2004-05 से 2008-09) के लिए वार्षिक गोपनीय रिपोर्टों में की गई प्रविष्टियां, जो उचित/औसत थीं और जिनमें कतिपय "सलाहकारी" और "प्रतिकूल" टिप्पणियां भी अन्तर्विष्ट थीं, याची को संसूचित नहीं की गई थीं और जिनकी प्रतियां (संचयी रूप में उपाबंध पी-13) याची ने सूचना का अधिकार अधिनियम, 2005 के अधीन प्राप्त की थीं, याची को उच्चतर वेतनमान मंजूर करने से इनकार करने का कोई आधार प्रदान नहीं करतीं जैसा कि माननीय उच्चतम न्यायालय द्वारा प्राधिकृत रूप से **देव दत्त** (पूर्वोक्त) वाले मामले में अभिनिर्धारित किया गया है और जिसे **अभिजीत घोष** (पूर्वोक्त) वाले मामले में पुनः दोहराया गया है ।

8. अभिलेखों से यह प्रकट होता है कि याची ने प्रत्यर्थी-निगम के प्रबंध निदेशक के पास पूर्वोक्त वार्षिक गोपनीय रिपोर्टों का पुनर्विलोकन करने के लिए तारीख 1 अप्रैल, 2010 को एक अभ्यावेदन उपाबंध पी-14 प्रस्तुत किया था । तारीख 4 जून, 2010 की संसूचना उपाबंध पी-15 द्वारा याची को यह सूचित किया गया कि उसके द्वारा प्रस्तुत अभ्यावेदन को पुनर्विलोकन के लिए सक्षम प्राधिकारी के पास भेजा जा रहा है ।

9. तथापि, याची के विद्वान् काउंसेल ने यह निवेदन किया है कि चूंकि विवादित वार्षिक गोपनीय रिपोर्टें वर्ष 2004-05 से 2008-09 की अवधि से संबंधित हैं, इसलिए उसके कार्य और आचरण में कोई भी सुधार करने के लिए कोई अवसर नहीं बचा है क्योंकि इन वार्षिक गोपनीय

---

[1] (2007) 10 एस. सी. सी. 513.
[2] (2007) 14 एस. सी. सी. 641.
[3] (2011) 10 एस. सी. सी. 121.
[4] 2006 (3) एस. एल. आर. 46.

रिपोर्टों को उसे कभी भी संसूचित नहीं किया गया और चूंकि **देव दत्त** (पूर्वोक्त) वाले मामले में माननीय उच्चतम न्यायालय द्वारा अधिकथित विधि को ध्यान में रखते हुए इनका उसके अहित के लिए अवलंब नहीं लिया जा सकता इसलिए यह समीचीन और न्याय हित में है कि प्रत्यर्थी-निगम द्वारा उसके उच्चतर वेतनमान मंजूरी के दावे के लिए उसकी पूर्ववर्ती और पश्चात्वर्ती अवधि की वार्षिक गोपनीय रिपोर्टों को सम्मिलित करते हुए उसके सम्पूर्ण सेवा अभिलेख के आधार पर विचार किया जाए ।

10. जब एक बार वर्ष 2004-05 से 2008-09 की अवधि के लिए वार्षिक गोपनीय रिपोर्टें याची को संसूचित न किए जाने के कारण विचार में नहीं ली जाएंगी तो उसे उच्चतर वेतनमान मंजूर करने के लिए उसके दावे मामले पर पूर्ववर्ती और पश्चात्वर्ती वार्षिक गोपनीय रिपोर्टों को सम्मिलित करते हुए उसके सम्पूर्ण सेवा अभिलेख के आधार पर ही विचार किया जा सकता है और यदि वर्ष 2004-05 से 2008-09 की अवधि के लिए विवादित वार्षिक गोपनीय रिपोर्टों का प्रत्यर्थी-निगम द्वारा पुनर्विलोकन किया जाता है तो उन्हें भी विचार में लिया जा सकता है ।

11. उपर्युक्त को ध्यान में रखते हुए, इस निदेश के साथ याचिका मंजूर की जाती है कि प्रत्यर्थी सं. 1 और 2/सक्षम प्राधिकारी, याची के नाम पर उसकी पूर्ववर्ती और पश्चात्वर्ती वार्षिक गोपनीय रिपोर्टों को सम्मिलित करते हुए, उसके सम्पूर्ण सेवा अभिलेख के आधार पर उसे ज्येष्ठ सहायक के पद पर ग्रेड-I, रु. 6400-10640 के उच्चतर वेतनमान को मंजूर करने के लिए पुनः विचार करें और यदि इस बीच वर्ष 2004-05 से 2008-09 की अवधि के लिए विवादित वार्षिक गोपनीय रिपोर्टों का पुनर्विलोकन किया जाता है तो आज से चार माह के भीतर पुनर्विलोकन डी. पी. सी. बिठाई जाए और यदि वह उपयुक्त पाया जाता है तो उसे उस तारीख से जिस तारीख को उसके कनिष्ठों अर्थात् प्रत्यर्थी सं. 11 और 12 को ऐसे फायदे मंजूर किए गए थे, उच्चतर पद के साथ उच्चतर वेतनमान मंजूर किया जाए ।

12. याचिका का लम्बित सिविल प्रकीर्ण याचिकाओं सहित, यदि कोई हों, निपटारा किया जाता है ।

याचिका मंजूर की गई ।

क./मह.

———

श्री रुप सिंह

बनाम

विद्वान् पीठासीन न्यायाधीश, श्रम न्यायालय और एक अन्य

तारीख 17 मई, 2013

न्यायमूर्ति धरम चन्द चौधरी

संविधान, 1950 – अनुच्छेद 226 – रिट – कर्मकार द्वारा बिना पूर्व अनुमति के 3 दिन की छुट्टी पर जाना – वापस लौटकर पूर्ववत् पदग्रहण करने की इच्छा जाहिर करना – प्रबंधतंत्र द्वारा उसे पद ग्रहण नहीं करने देना – बिना अनुमति छुट्टी पर जाने को आधार बनाकर कर्मकार को सेवा से हटा देना – आदेश अभिखंडित किए जाने योग्य होना – यदि कोई कर्मकार बिना अनुमति के छुट्टी पर चला जाता है तो ऐसी छुट्टी, अप्राधिकृत अनुपस्थिति की कोटि में आएगी न कि जानबूझकर अनुपस्थित रहने की तथा शास्ति के तौर पर इस आधार पर कर्मकार को सेवा से हटाना, उस पर अधिरोपित आरोप के अननुपात में होने के कारण अवैध, मनमाना और अयुक्तियुक्त होगा ।

वर्तमान मामले में, याची स्वीकृतः प्रत्यर्थी-प्रबंधतंत्र की एक यूनिट अर्थात् मैसर्स दुर्गा व्हीट प्रोडक्ट (प्रा.) लि., त्रिलोकपुर, कला-अम्ब, तहसील नाहन, जिला सिरमौर में वर्ष 1994 में लेखाकार के रूप में नियुक्त हुआ था । वह नवम्बर, 2002 तक नौकरी में निरन्तर बना रहा जब स्वयं उसके बयान के अनुसार, वह प्रत्यर्थी-कम्पनी के प्रबंध निदेशक की सम्यक् सूचना के अधीन तारीख 8 नवम्बर से 10 नवम्बर, 2002 तक तीन दिन के अवकाश पर गया था । तारीख 11 नवम्बर, 2002 को जब उसने अपनी ड्यूटी की रिपोर्ट की तो उसे प्रबंध निदेशक श्री राजन सूद द्वारा ऐसा नहीं करने दिया गया और उसकी सेवाएं मौखिक तौर पर समाप्त कर दी गईं । उसके बाद तारीख 15 नवम्बर, 2002 के पत्र द्वारा जिसे अभिकथित तौर पर याची ने तारीख 20 नवम्बर, 2002 को प्राप्त किया था, उसे तीन दिनों के भीतर ड्यूटी ग्रहण करने का निर्देश दिया गया था । परिणामस्वरूप, यद्यपि उसने तारीख 21 नवम्बर, 2002 को ड्यूटी के लिए रिपोर्ट किया, यद्यपि, प्रत्यर्थी-प्रबंधतंत्र के प्रबंध निदेशकों श्री राजन सूद और श्री संजय सूद उस दिन उपस्थित नहीं थे और ड्यूटी पर उपस्थित स्टाफ ने उसे

ड्यूटी ग्रहण नहीं करने दी यह बहाना बनाते हुए कि उन्हें यह निर्देश मिला है कि उसे ड्यूटी ग्रहण न करने दिया जाए । श्री संजय सूद से जब उनके मोबाइल पर सम्पर्क किया तब उन्होंने याची से तारीख 23 नवम्बर, 2002 को वापस आने के बाद कही जिस तारीख को वह शिमला से वापस आया था । तथापि, याची ने कार्यालय में न केवल अपनी ड्यूटी ग्रहण रिपोर्ट, उपाबंध पी-3 छोड़ दी अपितु, डाक प्राप्ति प्रदर्श पी-4 भी छोड़ दी । तारीख 23 नवम्बर, 2002 को जब वह पुनः प्रत्यर्थी-कम्पनी के कार्यालय में गया तो भी उसे ड्यूटी ग्रहण नहीं करने दिया गया, इस बहाने पर कि उसके स्थान पर एक अन्य लेखाकार नियुक्त कर लिया गया है और अब उसकी सेवाएं अपेक्षित नहीं रह गई हैं । इसके पश्चात्, उसने प्रत्यर्थी-कम्पनी को एक मांग नोटिस तथा संबंधित श्रम निरीक्षक को भी एक नोटिस भेजा । तारीख 15 मार्च, 2003 को न केवल याची अपितु पूर्वोक्त श्री राजन सूद भी श्रम निरीक्षक के समक्ष उपस्थित हुए थे । उक्त श्री सूद ने यह सूचित किया कि कम्पनी द्वारा याची के विरुद्ध पहले ही विभागीय जांच आरम्भ की जा चुकी है और निवेदन को मांग नोटिस में आगे कार्यवाही नहीं की जा सकती है । याची के विरुद्ध आरोप पत्र तैयार कर लिया गया था और जांच अधिकारी श्री वी. के. गुप्ता ने जांच के निष्कर्ष के आधार पर सभी आरोपों को याची के विरुद्ध साबित अभिनिर्धारित किया था । जांच रिपोर्ट, उपाबंध पी-5 है । इसे दावा याचिका उपाबंध पी-5 के साथ फाइल किया गया है । परिणामस्वरूप, एक निर्देश, विद्वान् निचले अधिकरण के समक्ष फाइल किया गया जिन्होंने तकनीकी तौर पर और विवेक का प्रयोग किए बिना अभिकथित तौर पर आक्षेपित अधिनिर्णय पारित किया । इससे व्यथित होकर यह याचिका फाइल की गई । न्यायालय द्वारा याचिका मंजूर करते हुए,

अभिनिर्धारित – विद्वान् निचले अधिकरण ने याची के स्वयं के कथन के साथ ही दस्तावेजी साक्ष्य पर विचार करने के पश्चात् तथा प्रत्यर्थी-प्रबंधतंत्र की ओर से प्रस्तुत मौखिक और दस्तावेजी साक्ष्यों पर भी विचार करने के पश्चात् यह अभिनिर्धारित किया कि याची को जांच करने के पश्चात् सही ही सेवा से हटाया गया है और इस प्रकार, उन्होंने निर्देश का नकारात्मक उत्तर दिया । अभिलेखों का परिशीलन करने और विरोधी दलीलों का भी परिशीलन करने के पश्चात् इस न्यायालय ने यह निष्कर्ष निकाला कि वर्तमान विचाराधीन वाद में अधिनिर्णय के लिए मात्र इस संविवाद पर विचार करने की आवश्यकता है कि क्या वर्तमान मामले में अभिलेख पर के

उपलब्ध सामग्रियों का गलत मूल्यांकन और गलत परिशीलन किया गया है और यदि ऐसा किया गया है तो क्या उसके कारण विद्वान् निचले अधिकरण द्वारा अभिलिखित निष्कर्ष प्रतिकूल हैं और वैधतः कायम रखे जाने योग्य नहीं हैं । याची के विरुद्ध मात्र अभिकथन यह है कि वह जानबूझकर तारीख 8 नवम्बर, 2002 से ड्यूटी पर अनुपस्थित रहा और उसके पश्चात् ड्यूटी के लिए वापस नहीं लौटा । यह भी कि जब प्रत्यर्थी-प्रबंधतंत्र के प्रबंध निदेशक श्री राजन सूद ने उसे यह बताया कि क्यों न उसके विरुद्ध अनुशासनिक कार्यवाही की जानी चाहिए तो उसने एक लाख रुपए की मांग की जिसकी अदायगी नहीं करने पर उसने प्रत्यर्थी-प्रबंधतंत्र को दो लाख रुपए संदाय करने के लिए बाध्य करने की चेतावनी दी और तद्द्वारा अभिकथित तौर पर न केवल उक्त श्री राजन सूद को ब्लैकमेल करने की कोशिश की अपितु प्रत्यर्थी-प्रबंधतंत्र के प्रबंध निदेशक होने के नाते उन्हें धमकी भी दी । सारांश में, इन अभिकथनों के उत्तर में याची ने यह कथन किया कि तारीख 7 नवम्बर, 2002 को प्रत्यर्थी सं. 2 के प्रबंध निदेशक को सूचित करने के पश्चात् वह अपने नातेदार में किसी के विवाह में सम्मिलित होने के लिए तीन दिन की छुट्टी पर गया था और जब वह तारीख 11 नवम्बर, 2002 को और तारीख 21 नवम्बर, 2002 को भी ड्यूटी के लिए वापस रिपोर्ट किया तो उसे अपनी ड्यूटी ग्रहण करने नहीं दी गई । निस्संदेह, अभि. सा. 1 के रूप में साक्षी कठघरे में, यह कथन किया कि वह दो दिन की मंजूर छुट्टी पर गया था । चूंकि, वह कोई आवेदन प्रस्तुत करने में असफल रहा कि उसने प्रत्यर्थी-प्रबंधतंत्र के समक्ष दो दिन की छुट्टी की मंजूरी के लिए आवेदन किया था जिन्होंने उसके पक्ष में छुट्टी मंजूर करने से इनकार किया है अथवा यह कि वह प्रत्यर्थी-प्रबंधतंत्र के प्रबंध निदेशक को सूचित करने के पश्चात् छुट्टी पर गया था, वर्तमान में, यह प्रतीत होता है कि वह छुट्टी मंजूर कराए बिना ड्यूटी से अनुपस्थित रहा, तथापि, इससे ऐसा कुछ भी निष्कर्ष नहीं निकलता है कि वह ड्यूटी से जानबूझकर अनुपस्थित रहा । यह न्यायालय विद्वान् निचले न्यायालय के इस मत से भी सहमत नहीं है कि याची जानबूझकर ड्यूटी से अनुपस्थित रहा । ऐसा कोई सुझाव देने के लिए भी कोई साक्ष्य नहीं है कि उसने इस कारण से तारीख 8 नवम्बर, 2002 के पश्चात् ड्यूटी के लिए रिपोर्ट नहीं किया था कि इसके तत्काल पश्चात् अर्थात् 1-1/2 माह के भीतर याची ने तारीख 29 दिसम्बर, 2002 के मांग नोटिस प्रदर्श आर डी द्वारा विवाद उद्भूत किया था । यद्यपि, वह अभि. सा. 1 के रूप में साक्षी कठघरे में साक्ष्य देते समय अपनी ड्यूटी ग्रहण रिपोर्ट तारीख 21 नवम्बर,

2002 (याचिका में उपाबंध पी-3) को प्रस्तुत करने में असफल रहा, तथापि, तारीख 21 नवम्बर, 2002 को अर्थात् उसकी प्राप्ति पर तारीख 15 नवम्बर, 2002 की नोटिस प्रदर्श आर ए की प्राप्ति पर उसके द्वारा ड्यूटी रिपोर्ट करने की संभावना से इनकार नहीं किया जा सकता है । इस प्रभाव के उसके बयान पर कोई भी व्यक्ति आंख बन्द नहीं कर सकता है कि तारीख 21 नवम्बर, 2002 को यद्यपि उसने ड्यूटी के लिए रिपोर्ट किया था तथापि, उसे कार्य नहीं करने दिया गया । यह उसके इस बयान से भी अग्रेषित होता है कि तारीख 23 नवम्बर, 2002 को भी उसे ड्यूटी ग्रहण करने की अनुज्ञा नहीं दी गई थी । निस्संदेह, श्री राजन सूद, प्रत्यर्थी-प्रबंधतंत्र के प्रबंध निदेशक ने अभि. सा. 1 के रूप में साक्षी कठघरे में साक्ष्य देते समय इस बात से इनकार किया कि याची को तारीख 11 नवम्बर, 2002 और तारीख 21 नवम्बर, 2002 को ड्यूटी ग्रहण नहीं करने दी गई, तथापि, उसने यह स्वीकार किया कि याची ने 1,00,000/- रुपए की मांग की जिसका संदाय नहीं करने पर न्यायालय में सामना करने की बात कही और इस पर उसने याची से तारीख 23 नवम्बर, 2002 को अपने पास आने के लिए कहा । इसका अभिप्राय यह है कि याची और प्रत्यर्थी-प्रबंधतंत्र एक दूसरे के सम्पर्क में थे । इसलिए, प्रत्यर्थी-प्रबंधतंत्र का यह कहना मिथ्या नहीं हो सकता है कि याची ने ड्यूटी के लिए रिपोर्ट नहीं किया । ऐसा अधिकतर ऐसे मामलों में कहा जा सकता है जहां याची छुट्टी मंजूर कराए बिना छुट्टी पर गया हो, अतएव, ड्यूटी से सामान्य अनुपस्थिति को विधिक भाषा में जानबूझकर ड्यूटी से अनुपस्थित रहना नहीं समझा जा सकता है, निःसंदेह, याची की अनुपस्थिति अप्राधिकृत कही जा सकती है । इसी प्रकार, यदि इस सत्य पर विश्वास कर लिया जाए कि शब्द "या तो 1,00,000/- रुपए का संदाय किया जाए या कम्पनी को 2,00,000/- रुपए का संदाय उसे करना पड़ेगा/न्यायालय का सामना करना पड़ेगा" का प्रयोग किया गया है तो भी इसे प्रत्यर्थी-साक्षी 1 को ब्लैकमेल करना या किसी भी तरीके से धमकी देना नहीं कहा जा सकता है । तथापि, यह न्यायालय यह महसूस करता है कि याची, जो तीन दिन अनुपस्थित रहने के पश्चात् ड्यूटी ग्रहण करना चाहता था, को ऐसा कथन नहीं करना चाहिए । क्या याची का आशय ड्यूटी के लिए वापस रिपोर्ट करना था, इससे प्रत्यर्थी-प्रबंधतंत्र के साथ ब्लैकमेल करने या किसी भी तरह का समझौता करने का प्रश्न उद्भूत होने का संभाव्यता नहीं होनी चाहिए थी । तथापि, याची का कभी भी आशय कार्य से अलग रहना नहीं था जैसा कि उसने कहा है, कि वह प्रत्यर्थी-कम्पनी के प्रबंध निदेशक को

नोटिस प्रदर्श आर ए का उत्तर देने के लिए जिम्मेदार नहीं है न ही उसने मांग नोटिस प्रदर्श आर डी दिया है और उसकी प्रति के साथ तथाकथित ड्यूटी से जानबूझकर अनुपस्थित रहने की तारीख से 1-1/2 माह की संक्षिप्त अवधि में श्रम निरीक्षक-सुलह अधिकारी (श्रम निरीक्षक), नाहन सर्किल, जिला सिरमौर को दिया है । सत्य यह है कि याची उस तरीके से सुस्पष्ट कोई असंगतता होने के बारे में अभिलेख पर इंगित करने में असफल रहा है जिसमें प्रतिवादी साक्षी 2 श्री वी. के. गुप्ता ने उसके विरुद्ध विरचित आरोपों की जांच की थी जिससे कि यह राय बनाई जा सके कि ऐसी असंगतता के कारण जांच अधिकारी द्वारा की गई कार्यवाहियां दूषित थीं और उसके द्वारा प्रस्तुत रिपोर्ट वैधतः और तथ्यतः कायम रखे जाने योग्य नहीं है । यह निष्कर्ष कि याची ड्यूटी से जानबूझकर अनुपस्थित रहा और यह भी कि उसने न केवल प्रत्यर्थी-प्रबंधतंत्र को ब्लैकमेल किया अपितु, उन्हें धमकी भी दी, यह इस कारण से तथ्यतः कायम रखे जाने योग्य नहीं है कि यह जानबूझकर अनुपस्थित रहने का मामला नहीं है इसके बजाय यह ड्यूटी से अप्राधिकृत तौर पर अनुपस्थित रहने पर एक साधारण मामला है । प्रत्यर्थी-प्रबंधतंत्र को ब्लैकमेल करने या धमकी देने का भी कोई प्रश्न नहीं उठता है और तथाकथित यदि इस कथन को सत्य मान भी लिया जाए तो कम से कम मात्र यही निष्कर्ष निकलता है कि याची मामले को लगभग 1,00,000/- रुपए में प्रत्यर्थी प्रबंधतंत्र के साथ समझौता करने के लिए तैयार था और ऐसा नहीं होने पर विधि की सम्यक् प्रक्रिया के अधीन न्यायालय में 2,00,000/- रुपए का संदाय करवा लेगा । ऐसा कथन, सभी प्रकार से ऋजु है और न्याय उद्देश्य में भी है, जिसे प्रत्यर्थी-प्रबंधतंत्र को धमकी देना या ब्लैकमेल करना नहीं समझा जा सकता है जिसके कारण उसने सेवा से हटाने का अत्यधिक शास्ति दी जा सके । वर्तमान मामला इस प्रकार का प्रतीत होता है कि प्रत्यर्थी-प्रबंधतंत्र प्रतिशोध के कारण याची से छुटकारा चाहते थे और इस कारण से ही उसे ड्यूटी ग्रहण नहीं करने दिया गया और उसे इसके बजाय, इस निर्णय में इसमें उपर्युक्त रूप से प्रकाश में लाए गए अभिकथनों के आधार पर उसके विरुद्ध जांच आरम्भ करवा दी । न केवल यह अपितु, उसके ऊपर सेवा से हटाने की अत्यधिक शास्ति अधिरोपित कर दी गई जो उसके विरुद्ध लगाए गए अभियोगों को ध्यान में रखते हुए समुचित नहीं था और बल्कि यह अभिकथित अवचार की तुलना में अननुपातिक है । (पैरा 5, 6, 7, 8 और 9)

इसलिए, अभिलेख पर उपलब्ध साक्ष्य और इस मामले के तथ्यों का

भी पुनःमूल्यांकन करने का समेकित प्रभाव यह है कि निःसंदेह, याची तारीख 8 नवम्बर, 2002 से तारीख 10 नवम्बर, 2002 तक अप्राधिकृत तौर पर छुट्टी पर रहा, यद्यपि उसने ड्यूटी के लिए वापस रिपोर्ट की किन्तु उसे प्रत्यर्थी-प्रबंधतंत्र द्वारा किन्हीं कारणों से जिसे वे ही बेहतर तरीके से जानते हैं, उसे ड्यूटी ग्रहण करने नहीं दिया गया । याची, नौकरी की आवश्यकता होने के कारण अब भी अपनी ड्यूटी ग्रहण करना चाहता है । सेवा से हटाए जाने का आदेश, उसके विरुद्ध लगाए गए अभियोगों की प्रकृति को ध्यान में रखते हुए अभिकथित अवचार की तुलना में अननुपातिक है, जो याची के ऊपर एक दाग है और इस प्रकार उससे उसका सम्पूर्ण कैरियर बर्बाद हो गया है । इसलिए, तारीख 25 जून, 2003 की शास्ति का आक्षेपित आदेश प्रदर्श पी-18, विधि की दृष्टि में कायम रखे जाने योग्य नहीं है और यह अभिखंडित तथा अपास्त किए जाने योग्य है । जांच रिपोर्ट उपाबंध पी-5 इस सीमा तक कि याची ड्यूटी से जानबूझकर अनुपस्थित रहा और प्रत्यर्थी-प्रबंधतंत्र को ब्लैकमेल/धमकी भी दी, को विधिक तौर पर कायम नहीं रखा जा सकता है इस कारण से कि यह ड्यूटी से अप्राधिकृत अनुपस्थिति का मामला है और न कि जानबूझकर अनुपस्थित रहने का मामला है । इस कथन को यद्यपि सत्य भी साबित कर दिया जाता है तो भी इसे प्रत्यर्थी-प्रबंधतंत्र को ब्लैकमेल या धमकी देना नहीं समझा जा सकता है । इसलिए, ऐसी रिपोर्ट पर सेवा से हटाए जाने की शास्ति अधिरोपित करना किसी भी तरह से वैधतः न्यायानुमत नहीं है । इस न्यायालय ने आक्षेपित आदेश को अपास्त करने के पश्चात् अनुशासनिक प्राधिकारी को यह निर्देश दिया कि वह नए सिरे से अधिरोपित शास्ति के बारे में मामले पर विचार करे, तथापि, इस दशा में भी यह और विलम्ब करने के समान होगा और ऐसी स्थिति में, पक्षकारों के बीच अन्य दौर की मुकदमेबाजी भी शुरू हो सकती है । जब इस न्यायालय का यह समाधान है कि याची पर अधिरोपित शास्ति अभिकथित अवचार के मुकाबले अननुपातिक है, इसलिए, सेवा से हटाए जाने के आक्षेपित आदेश को अपास्त करते हुए प्रत्यर्थी-प्रबंधतंत्र को यह निर्देश देती है कि इस निर्णय के अनुसरण में, वह याची की निरन्तरता और ज्येष्ठता के साथ तारीख 8 नवम्बर, 2002 से उसकी पुनर्नियुक्ति तक की अवधि के लिए किसी मजदूरी का संदाय किए बिना याची की पुनर्नियुक्ति करें जिससे कि न्याय उद्देश्य पूरा होगा । (पैरा 15, 16 और 17)

निर्दिष्ट निर्णय

पैरा

[2012] (2012) 3 एस. सी. सी. 178 :
कृष्णकांत पी. परमार बनाम **भारत संघ और एक अन्य** ; 12

[2009] (2009) 7 एस. सी. सी. 301 :
जगदीश सिंह बनाम **पंजाब इंजीनियरिंग कालेज और अन्य** ; 11

[2007] 2007 (1) शिमला एस. सी. 232 :
एच. पी. एस. आई. डी. सी. बनाम **पवन कुमार** ; 14

[2004] (2004) 4 एस. सी. सी. 560 :
श्री भगवान लाल आर्य बनाम **पुलिस आयुक्त, दिल्ली और अन्य** ; 10

[1996] 1996 लैब. आई. सी. 2118 :
शंकर लाल शर्मा बनाम **राजस्थान राज्य और अन्य** ; 13

[1993] 1993 (3) एस. सी. टी. 274 :
राजेश कुमार त्रिपाठी बनाम **उत्तर प्रदेश राज्य** । 12

आरम्भिक (सिविल) रिट अधिकारिता याचिका : 2009 की सिविल रिट सं. 2791.

संविधान, 1950 के अनुच्छेद 226 के अधीन सिविल रिट याचिका ।

याची की ओर से श्री युद्धवीर सिंह ठाकुर, अधिवक्ता

प्रत्यर्थी सं. 1 की ओर से –

प्रत्यर्थी सं. 2 की ओर से श्री अतुल झिंगन, अधिवक्ता

न्यायमूर्ति धरम चन्द चौधरी – इसमें विद्वान् पीठासीन न्यायाधीश, औद्योगिक अधिकरण-सह-श्रम न्यायालय, जिसे इसमें इसके पश्चात् संक्षेप में "अधिकरण" कहा गया है, द्वारा 2005 के निदेश सं. 38 में पारित तारीख 10 जुलाई, 2009 के अधिनिर्णय उपाबंध पी-1 को चुनौती दी गई है, जिसमें समुचित सरकार द्वारा किए गए निर्देश का नकारात्मक उत्तर देते

हुए, याची-कर्मकार को हटाए जाने को वैध और विधिमान्य अभिनिर्धारित किया गया है ।

2. इन कार्यवाहियों में मुख्य तथ्य अत्यधिक विवादित नहीं है क्योंकि याची स्वीकृततः प्रत्यर्थी-प्रबंधतंत्र की एक यूनिट अर्थात् मैसर्स दुर्गा व्हीट प्रोडक्ट (प्रा.) लि., त्रिलोकपुर, कला-अम्ब, तहसील नाहन, जिला सिरमौर में वर्ष 1994 में लेखाकार के रूप में नियुक्त हुआ था । वह नवम्बर, 2002 तक नौकरी में निरन्तर बना रहा जब स्वयं उसके बयान के अनुसार, वह प्रत्यर्थी-कम्पनी के प्रबंध निदेशक की सम्यक् सूचना के अधीन तारीख 8 नवम्बर से 10 नवम्बर, 2002 तक तीन दिन के अवकाश पर गया था । तारीख 11 नवम्बर, 2002 को जब उसने अपनी ड्यूटी की रिपोर्ट की तो उसे प्रबंध निदेशक श्री राजन सूद द्वारा ऐसा नहीं करने दिया गया और उसकी सेवाएं मौखिक तौर पर समाप्त कर दी गईं । उसके बाद तारीख 15 नवम्बर, 2002 के पत्र द्वारा जिसे अभिकथित तौर पर याची ने तारीख 20 नवम्बर, 2002 को प्राप्त किया था, उसे तीन दिनों के भीतर ड्यूटी ग्रहण करने का निर्देश दिया गया था । परिणामस्वरूप, यद्यपि उसने तारीख 21 नवम्बर, 2002 को ड्यूटी के लिए रिपोर्ट किया, यद्यपि, प्रत्यर्थी-प्रबंधतंत्र के प्रबंध निदेशकों श्री राजन सूद और श्री संजय सूद उस दिन उपस्थित नहीं थे और ड्यूटी पर उपस्थित स्टाफ ने उसे ड्यूटी ग्रहण नहीं करने दी यह बहाना बनाते हुए कि उन्हें यह निर्देश मिला है कि उसे ड्यूटी ग्रहण न करने दिया जाए । श्री संजय सूद से जब उनके मोबाइल पर सम्पर्क किया तब उन्होंने याची से तारीख 23 नवम्बर, 2002 को वापस आने के बाद कही जिस तारीख को वह शिमला से वापस आया था । तथापि, याची ने कार्यालय में न केवल अपनी ड्यूटी ग्रहण रिपोर्ट, उपाबंध पी-3 छोड़ दी अपितु, डाक प्राप्ति प्रदर्श पी-4 भी छोड़ दी । तारीख 23 नवम्बर, 2002 को जब वह पुनः प्रत्यर्थी-कम्पनी के कार्यालय में गया तो भी उसे ड्यूटी ग्रहण नहीं करने दिया गया, इस बहाने पर कि उसके स्थान पर एक अन्य लेखाकार नियुक्त कर लिया गया है और अब उसकी सेवाएं अपेक्षित नहीं रह गई हैं । इसके पश्चात्, उसने प्रत्यर्थी-कम्पनी को एक मांग नोटिस तथा संबंधित श्रम निरीक्षक को भी एक नोटिस भेजा ।

3. तारीख 15 मार्च, 2003 को न केवल याची अपितु पूर्वोक्त श्री राजन सूद भी श्रम निरीक्षक के समक्ष उपस्थित हुए थे । उक्त श्री सूद ने यह सूचित किया कि कम्पनी द्वारा याची के विरुद्ध पहले ही विभागीय जांच आरम्भ की जा चुकी है और निवेदन को मांग नोटिस में आगे कार्यवाही

नहीं की जा सकती है । याची के विरुद्ध आरोप पत्र तैयार कर लिया गया था और जांच अधिकारी श्री वी. के. गुप्ता ने जांच के निष्कर्ष के आधार पर सभी आरोपों को याची के विरुद्ध साबित अभिनिर्धारित किया था । जांच रिपोर्ट, उपाबंध पी-5 है । इसे दावा याचिका उपाबंध पी-5 के साथ फाइल किया गया है । परिणामस्वरूप, एक निर्देश, विद्वान् निचले अधिकरण के समक्ष फाइल किया गया जिन्होंने तकनीकी तौर पर और विवेक का प्रयोग किए बिना अभिकथित तौर पर आक्षेपित अधिनिर्णय पारित किया ।

4. दूसरी ओर, प्रत्यर्थी-प्रबंधतंत्र ने यह आधार लिया जैसा कि उत्तर से प्रकट होता है कि याची प्रतिमाह 3,000/- रुपए के साथ 500/- रुपए वार्षिक वेतन वृद्धि सहित लेखाकार के रूप में नियुक्त हुआ था जब तक कि उसका वेतन 10,000/- रुपए तक न हो जाए । प्रत्यर्थी-प्रबंधतंत्र के पक्षकथन के अनुसार भी याची तारीख 8 नवम्बर, 2002 से जानबूझकर और अप्राधिकृत तौर पर ड्यूटी से अनुपस्थित रहा और ड्यूटी पर वापस नहीं लौटा । इस बात से इनकार किया गया कि वह ईप्सित अनुज्ञा लेने के पश्चात् तीन दिनों की छुट्टी पर गया था । जब उससे यह पूछा गया कि उसके विरुद्ध अनुशासनात्मक कार्यवाही क्यों न की जाए तो उसने प्रत्यर्थी-प्रबंधतंत्र के प्रबंध निदेशक को ब्लैकमेल और धमकी देते हुए यह कहा कि या तो उसे एक लाख रुपए का संदाय किया जाए अथवा नहीं तो वह प्रत्यर्थी-प्रबंधतंत्र के ऊपर दो लाख रुपए का भार डाल देगा । उसने कारण बताओ नोटिस लेने से इनकार कर दिया जिसे प्रत्यर्थी सं. 2 द्वारा असुपुर्दगी के रूप में प्राप्त किया गया । तथापि, उक्त प्रत्यर्थी ने तारीख 19 दिसम्बर, 2002 के पत्र द्वारा याची को यह सूचित किया कि उसके विरुद्ध अभियोगों/आरोपों की जांच करने के लिए जांच अधिकारी के रूप में श्री वी. के. गुप्ता को नियुक्त किया गया है । वह सम्यक् रूप से आरोप पत्रित किया गया और जांच के निष्कर्ष पर उसे जांच रिपोर्ट तामील की गई और अभिलेख पर उसका बयान लेने के पश्चात् उसे सही ही सेवा से हटाया गया है ।

5. अब आक्षेपित अधिनिर्णय पर विचार करते हैं, विद्वान् निचले अधिकरण ने याची के स्वयं के कथन के साथ ही दस्तावेजी साक्ष्य पर विचार करने के पश्चात् तथा प्रत्यर्थी-प्रबंधतंत्र की ओर से प्रस्तुत मौखिक और दस्तावेजी साक्ष्यों पर भी विचार करने के पश्चात् यह अभिनिर्धारित किया कि याची को जांच करने के पश्चात् सही ही सेवा से हटाया गया है और इस प्रकार, उन्होंने निर्देश का नकारात्मक उत्तर दिया ।

6. अभिलेखों का परिशीलन करने और विरोधी दलीलों का भी

परिशीलन करने के पश्चात् इस न्यायालय ने यह निष्कर्ष निकाला कि वर्तमान विचाराधीन वाद में अधिनिर्णय के लिए मात्र इस संविवाद पर विचार करने की आवश्यकता है कि क्या वर्तमान मामले में अभिलेख पर के उपलब्ध सामग्रियों का गलत मूल्यांकन और गलत परिशीलन किया गया है और यदि ऐसा किया गया है तो क्या उसके कारण विद्वान् निचले अधिकरण द्वारा अभिलिखित निष्कर्ष प्रतिकूल हैं और वैधतः कायम रखे जाने योग्य नहीं है ।

7. याची के विरुद्ध मात्र अभिकथन यह है कि वह जानबूझकर तारीख 8 नवम्बर, 2002 से ड्यूटी पर अनुपस्थित रहा और उसके पश्चात् ड्यूटी के लिए वापस नहीं लौटा । यह भी कि जब प्रत्यर्थी-प्रबंधतंत्र के प्रबंध निदेशक श्री राजन सूद ने उसे यह बताया कि क्यों न उसके विरुद्ध अनुशासनिक कार्यवाही की जानी चाहिए तो उसने एक लाख रुपए की मांग की जिसकी अदायगी नहीं करने पर उसने प्रत्यर्थी-प्रबंधतंत्र को दो लाख रुपए संदाय करने के लिए बाध्य करने की चेतावनी दी और तद्द्वारा अभिकथित तौर पर न केवल उक्त श्री राजन सूद को ब्लैकमेल करने की कोशिश की अपितु प्रत्यर्थी-प्रबंधतंत्र के प्रबंध निदेशक होने के नाते उन्हें धमकी भी दी । सारांश में, इन अभिकथनों के उत्तर में याची ने यह कथन किया कि तारीख 7 नवम्बर, 2002 को प्रत्यर्थी सं. 2 के प्रबंध निदेशक को सूचित करने के पश्चात् वह अपने नातेदार में किसी के विवाह में सम्मिलित होने के लिए तीन दिनों की छुट्टी पर गया था और जब वह तारीख 11 नवम्बर, 2002 को और तारीख 21 नवम्बर, 2002 को भी ड्यूटी के लिए वापस रिपोर्ट किया तो उसे अपनी ड्यूटी ग्रहण करने नहीं दी गई । निस्संदेह, अभि. सा. 1 के रूप में साक्षी कठघरे में, यह कथन किया कि वह दो दिन की मंजूर छुट्टी पर गया था । चूंकि, वह कोई आवेदन प्रस्तुत करने में असफल रहा कि उसने प्रत्यर्थी-प्रबंधतंत्र के समक्ष दो दिन की छुट्टी की मंजूरी के लिए आवेदन किया था जिन्होंने उसके पक्ष में छुट्टी मंजूर करने से इनकार किया है अथवा यह कि वह प्रत्यर्थी-प्रबंधतंत्र के प्रबंध निदेशक को सूचित करने के पश्चात् छुट्टी पर गया था, वर्तमान में, यह प्रतीत होता है कि वह छुट्टी मंजूर कराए बिना ड्यूटी से अनुपस्थित रहा, तथापि, इससे ऐसा कुछ भी निष्कर्ष नहीं निकलता है कि वह ड्यूटी में जानबूझकर अनुपस्थित रहा । यह न्यायालय विद्वान् निचले न्यायालय के इस मत से भी सहमत नहीं है कि याची जानबूझकर ड्यूटी से अनुपस्थित रहा । ऐसा कोई सुझाव देने के लिए भी कोई साक्ष्य नहीं है कि उसने इस कारण से तारीख 8 नवम्बर, 2002 के पश्चात् ड्यूटी के लिए रिपोर्ट नहीं

किया था कि इसके तत्काल पश्चात् अर्थात् 1-1/2 माह के भीतर याची ने तारीख 29 दिसम्बर, 2002 के मांग नोटिस प्रदर्श आरडी द्वारा विवाद उद्भूत किया था । यद्यपि, वह अभि. सा. 1 के रूप में साक्षी कठघरे में साक्ष्य देते समय अपनी ड्यूटी ग्रहण रिपोर्ट तारीख 21 नवम्बर, 2002 (याचिका में उपाबंध पी-3) को प्रस्तुत करने में असफल रहा, तथापि, तारीख 21 नवम्बर, 2002 को अर्थात् उसकी प्राप्ति पर तारीख 15 नवम्बर, 2002 की नोटिस प्रदर्श आरए की प्राप्ति पर उसके द्वारा ड्यूटी रिपोर्ट करने की संभावना से इनकार नहीं किया जा सकता है । इस प्रभाव के उसके बयान पर कोई भी व्यक्ति आंख बन्द नहीं कर सकता है कि तारीख 21 नवम्बर, 2002 को यद्यपि उसने ड्यूटी के लिए रिपोर्ट किया था तथापि, उसे कार्य नहीं करने दिया गया । यह उसके इस बयान से भी अग्रेषित होता है कि तारीख 23 नवम्बर, 2002 को भी उसे ड्यूटी ग्रहण करने की अनुज्ञा नहीं दी गई थी ।

8. निस्संदेह, श्री राजन सूद, प्रत्यर्थी-प्रबंधतंत्र के प्रबंध निदेशक ने अभि. सा. 1 के रूप में साक्षी कठघरे में साक्ष्य देते समय इस बात से इनकार किया कि याची को तारीख 11 नवम्बर, 2002 और तारीख 21 नवम्बर, 2002 को ड्यूटी ग्रहण नहीं करने दी गई, तथापि, उसने यह स्वीकार किया कि याची ने 1,00,000/- रुपए की मांग की जिसका संदाय नहीं करने पर न्यायालय में सामना करने की बात कही और इस पर उसने याची से तारीख 23 नवम्बर, 2002 को अपने पास आने के लिए कहा । इसका अभिप्राय यह है कि याची और प्रत्यर्थी-प्रबंधतंत्र एक दूसरे के सम्पर्क में थे । इसलिए, प्रत्यर्थी-प्रबंधतंत्र का यह कहना मिथ्या नहीं हो सकता है कि याची ने ड्यूटी के लिए रिपोर्ट नहीं किया । ऐसा अधिकतर ऐसे मामलों में कहा जा सकता है जहां याची छुट्टी मंजूर कराए बिना छुट्टी पर गया हो, अतएव, ड्यूटी से सामान्य अनुपस्थिति को विधिक भाषा में जानबूझकर ड्यूटी से अनुपस्थित रहना नहीं समझा जा सकता है, निःसंदेह, याची की अनुपस्थिति अप्राधिकृत कही जा सकती है । इसी प्रकार, यदि इस सत्य पर विश्वास कर लिया जाए कि शब्द "या तो 1,00,000/- रुपए का संदाय किया जाए या कम्पनी को 2,00,000/- रुपए का संदाय उसे करना पड़ेगा/न्यायालय का सामना करना पड़ेगा" का प्रयोग किया गया है तो भी इसे प्रत्यर्थी-साक्षी 1 को ब्लैकमेल करना या किसी भी तरीके से धमकी देना नहीं कहा जा सकता है । तथापि, यह न्यायालय यह महसूस करता है कि याची, जो तीन दिन अनुपस्थित रहने के पश्चात् ड्यूटी ग्रहण करना

चाहता था, को ऐसा कथन नहीं करना चाहिए । क्या याची का आशय ड्यूटी के लिए वापस रिपोर्ट करना था, इससे प्रत्यर्थी-प्रबंधतंत्र के साथ ब्लैकमेल करने या किसी भी तरह का समझौता करने का प्रश्न उद्भूत होने की संभाव्यता नहीं होनी चाहिए थी । तथापि, याची का कभी भी आशय कार्य से अलग रहना नहीं था जैसा कि उसने कहा है, कि वह प्रत्यर्थी-कम्पनी के प्रबंध निदेशक को नोटिस प्रदर्श आरए का उत्तर देने के लिए जिम्मेदार नहीं है न ही उसने मांग नोटिस प्रदर्श आरडी दिया है और उसकी प्रति के साथ तथाकथित ड्यूटी से जानबूझकर अनुपस्थित रहने की तारीख से 1-1/2 माह की संक्षिप्त अवधि में श्रम निरीक्षक-सुलह अधिकारी (श्रम निरीक्षक), नाहन सर्किल, जिला सिरमौर को दिया है ।

9. सत्य यह है कि याची उस तरीके से सुस्पष्ट कोई असंगतता होने के बारे में अभिलेख पर इंगित करने में असफल रहा है जिसमें प्रतिवादी साक्षी 2 श्री वी. के. गुप्ता ने उसके विरुद्ध विरचित आरोपों की जांच की थी जिससे कि यह राय बनाई जा सके कि ऐसी असंगतता के कारण जांच अधिकारी द्वारा की गई कार्यवाहियां दूषित थीं और उसके द्वारा प्रस्तुत रिपोर्ट वैधतः और तथ्यतः कायम रखे जाने योग्य नहीं है । यह निष्कर्ष कि याची ड्यूटी से जानबूझकर अनुस्थित रहा और यह भी कि उसने न केवल प्रत्यर्थी-प्रबंधतंत्र को ब्लैकमेल किया अपितु, उन्हें धमकी भी दी, यह इस कारण से तथ्यतः कायम रखे जाने योग्य नहीं है कि यह जानबूझकर अनुपस्थित रहने का मामला नहीं है इसके बजाय यह ड्यूटी से अप्राधिकृत तौर पर अनुपस्थित रहने पर एक साधारण मामला है । प्रत्यर्थी-प्रबंधतंत्र को ब्लैकमेल करने या धमकी देने का भी कोई प्रश्न नहीं उठता है और तथाकथित यदि इस कथन को सत्य मान भी लिया जाए तो कम से कम मात्र यही निष्कर्ष निकलता है कि याची मामले को लगभग 1,00,000/- रुपए में प्रत्यर्थी प्रबंधतंत्र के साथ समझौता करने के लिए तैयार था और ऐसा नहीं होने पर विधि की सम्यक् प्रक्रिया के अधीन न्यायालय में 2,00,000/- रुपए का संदाय करवा लेगा । ऐसा कथन, सभी प्रकार से ऋजु है और न्याय उद्देश्य में भी है, जिसे प्रत्यर्थी-प्रबंधतंत्र को धमकी देना या ब्लैकमेल करना नहीं समझा जा सकता है जिसके कारण उसे सेवा से हटाने की अत्यधिक शास्ति दी जा सके । वर्तमान मामला इस प्रकार का प्रतीत होता है कि प्रत्यर्थी-प्रबंधतंत्र प्रतिशोध के कारण याची से छुटकारा चाहते थे और इस कारण से ही उसे ड्यूटी ग्रहण नहीं करने दिया गया और उसे इसके बजाय, इस निर्णय में इसमें उपर्युक्त रूप से प्रकाश में लाए गए अभिकथनों के आधार पर उसके

विरुद्ध जांच आरम्भ करवा दी । न केवल यह अपितु, उसके ऊपर सेवा से हटाने की अत्यधिक शास्ति अधिरोपित कर दी गई जो उसके विरुद्ध लगाए गए अभियोगों को ध्यान में रखते हुए समुचित नहीं था और बल्कि यह अभिकथित अवचार की तुलना में अननुपातिक है ।

10. **श्री भगवान लाल आर्य** बनाम **पुलिस आयुक्त, दिल्ली और अन्य**[1] वाले मामले में जहां एक पुलिस कांस्टेबल चिकित्सीय आधार पर दो माह से अधिक अवधि के लिए ड्यूटी से अनुपस्थित रहा वहां माननीय उच्चतम न्यायालय ने यह अभिनिर्धारित किया कि ड्यूटी से अनुपस्थिति के अभिकथित अवचार के आधार पर पदच्युति अत्यधिक और अननुपातिक है, अतएव, यह विधिक तौर पर अनुज्ञेय नहीं है । वर्तमान मामला, माननीय उच्चतम न्यायालय के समक्ष इस मामले से तुलनात्मक रूप में बेहतर आधार हो सकता है इस कारण से कि यहां ड्यूटी से अनुपस्थिति मात्र तीन दिनों के लिए थी ।

11. इसी प्रकार का विनिश्चयाधार माननीय उच्चतम न्यायालय द्वारा पुनः **जगदीश सिंह** बनाम **पंजाब इंजीनियरिंग कालेज और अन्य**[2] वाले मामले में दिया गया ।

12. इसी प्रकार का मत माननीय उच्चतम न्यायालय द्वारा पुनः **कृष्णकांत पी. परमार** बनाम **भारत संघ और एक अन्य**[3] तथा **राजेश कुमार त्रिपाठी** बनाम **उत्तर प्रदेश राज्य**[4] वाले मामलों में व्यक्त किया गया ।

13. **शंकर लाल शर्मा** बनाम **राजस्थान राज्य और अन्य**[5] वाले मामले में राजस्थान उच्च न्यायालय द्वारा भी इसी प्रकार का मत व्यक्त किया गया ।

14. प्रत्यर्थी-प्रबंधतंत्र की ओर से उद्धृत **एच. पी. एस. आई. डी. सी.** बनाम **पवन कुमार**[6] वाले मामले में इस न्यायालय के समन्वय न्यायपीठ द्वारा दिए गए निर्णय इस मामले के तथ्यों में लागू नहीं होते हैं और इस प्रकार यह प्रत्यर्थी-प्रबंधतंत्र की कोई सहायता नहीं करते हैं ।

15. इसलिए, अभिलेख पर उपलब्ध साक्ष्य और इस मामले के तथ्यों का भी पुनःमूल्यांकन करने का समेकित प्रभाव यह है कि निःसंदेह, याची

---

[1] (2004) 4 एस. सी. सी. 560.
[2] (2009) 7 एस. सी. सी. 301.
[3] (2012) 3 एस. सी. सी. 178.
[4] 1993 (3) एस. सी. टी. 274.
[5] 1996 लैब. आई. सी. 2118.
[6] 2007 (1) शिमला. एस. सी. 232.

तारीख 8 नवम्बर, 2002 से तारीख 10 नवम्बर, 2002 तक अप्राधिकृत तौर पर छुट्टी पर रहा, यद्यपि उसने ड्यूटी के लिए वापस रिपोर्ट की किन्तु उसे प्रत्यर्थी-प्रबंधतंत्र द्वारा किन्हीं कारणों से जिसे वे ही बेहतर तरीके से जानते हैं, उसे ड्यूटी ग्रहण करने नहीं दिया गया । याची, नौकरी की आवश्यकता होने के कारण अब भी अपनी ड्यूटी ग्रहण करना चाहता है । सेवा से हटाए जाने का आदेश, उसके विरुद्ध लगाए गए अभियोगों की प्रकृति को ध्यान में रखते हुए अभिकथित अवचार की तुलना में अननुपातिक है, जो याची के ऊपर एक दाग है और इस प्रकार उससे उसका सम्पूर्ण कैरियर बर्बाद हो गया है । इसलिए, तारीख 25 जून, 2003 की शास्ति का आक्षेपित आदेश प्रदर्श पी-18, विधि की दृष्टि में कायम रखे जाने योग्य नहीं है और यह अभिखंडित तथा अपास्त किए जाने योग्य है ।

16. जांच रिपोर्ट उपाबंध पी-5 इस सीमा तक कि याची ड्यूटी से जानबूझकर अनुपस्थित रहा और प्रत्यर्थी-प्रबंधतंत्र को ब्लैकमेल/धमकी भी दी, को विधिक तौर पर कायम नहीं रखा जा सकता है इस कारण से कि यह ड्यूटी से अप्राधिकृत अनुपस्थिति का मामला है और न कि जानबूझकर अनुपस्थित रहने का मामला है । इस कथन को यद्यपि सत्य भी साबित कर दिया जाता है तो भी इसे प्रत्यर्थी-प्रबंधतंत्र को ब्लैकमेल या धमकी देना नहीं समझा जा सकता है । इसलिए, ऐसी रिपोर्ट पर सेवा से हटाए जाने की शास्ति अधिरोपित करना किसी भी तरह से वैधतः न्यायानुमत नहीं है ।

17. इस न्यायालय ने आक्षेपित आदेश को अपास्त करने के पश्चात् अनुशासनिक प्राधिकारी को यह निर्देश दिया कि वह नए सिरे से अधिरोपित शास्ति के बारे में मामले पर विचार करे, तथापि, इस दशा में भी यह और विलम्ब करने के समान होगा और ऐसी स्थिति में, पक्षकारों के बीच अन्य दौर की मुकदमेबाजी भी शुरू हो सकती है । जब इस न्यायालय का यह समाधान है कि याची पर अधिरोपित शास्ति अभिकथित अवचार के मुकाबले अननुपातिक है, इसलिए, सेवा से हटाए जाने के आक्षेपित आदेश को अपास्त करते हुए प्रत्यर्थी-प्रबंधतंत्र को यह निर्देश देती है कि इस निर्णय के अनुसरण में, वह याची की निरन्तरता और ज्येष्ठता के साथ तारीख 8 नवम्बर, 2002 से उसकी पुनर्नियुक्ति तक की अवधि के लिए किसी मजदूरी का संदाय किए बिना याची की पुनर्नियुक्ति करें जिससे कि न्याय उद्देश्य पूरा होगा । इस निष्कर्ष पर पहुंचने के लिए इस न्यायालय ने **श्री भगवान लाल आर्य** (उपर्युक्त) वाले मामले में माननीय उच्चतम न्यायालय के निर्णय से समर्थन प्राप्त किया जो इस प्रकार है :–

"इस प्रकार, वर्तमान मामला, उन मामलों में से एक है जिसमें हमारा यह समाधान है कि अपीलार्थी पर अधिरोपित सेवा से हटाए जाने का दंड, न केवल अत्यंत अधिक और अननुपातिक है अपितु यह उन मामलों में से एक है जिसमें सेवा नियमों के अनुसार यह अधिरोपित करना अनुज्ञेय नहीं है । साधारणतया, हम ऐसे दंड को अपास्त कर देते हैं और इसे विधि के अनुसार तथा निर्णय में अधिकथित सिद्धांतों की संगतता के अनुसार, नए सिरे से दंड का आदेश पारित करने के लिए अनुशासनिक प्राधिकारी के पास वापस भेज देते हैं । तथापि, इससे मुकदमेबाजी भी लम्बी खींच जाती है । पहले से ही नुकसान समय को ध्यान में रखते हुए, हम सेवा समाप्त करने के दंड को अपास्त करना समुचित समझते हैं और इसके अलावा अपीलार्थी को सेवा में पुनः बहाल करने का निर्देश देते हैं । इस शर्त के अध्यधीन कि उस अवधि के दौरान जिनमें अपीलार्थी ड्यूटी से अनुपस्थित रहा और उस तारीख तक की अवधि, जब अपीलार्थी इस निर्णय के अनुसरण में वापस ड्यूटी रिपोर्ट की गणना ड्यूटी पर बने रहने की अवधि में नहीं की जाएगी । अपीलार्थी इस अवधि के दौरान किसी भी सेवा फायदों का हकदार नहीं होगा । तद्द्वारा, अपीलार्थी को मंजूर आंशिक अनुतोषों की प्रकृति को देखते हुए, अब सेवा से हटाए जाने के दंड के बदले में विभागीय कार्यवाहियों में कोई भी दंड का आदेश पारित करने की आवश्यकता नहीं रह गई है, जिसे पहले ही अपास्त कर दिया गया है ।"

18. इसमें उपर्युक्त कारणों से, वर्तमान रिट याचिका सफल होती है और तद्नुसार इसे मंजूर किया जाता है । परिणामतः, आक्षेपित अधिनिर्णय उपाबंध पी-1 प्रतिकूल होने के नाते अभिखंडित और अपास्त किया जाता है । प्रत्यर्थी-प्रबंधतंत्र को यह निर्देश दिया जाता है कि वह याची द्वारा द्वितीय प्रत्यर्थी (प्रत्यर्थी-प्रबंधतंत्र) के प्रबंध-निदेशक के समक्ष इस निर्णय की प्रति प्रस्तुत करने की तारीख से 6 सप्ताह के भीतर याची की निरन्तरता और ज्येष्ठता को ध्यान में रखते हुए किन्तु बिना पिछली मजदूरियों के पुनर्नियुक्ति करें । तद्नुसार, याचिका निपटाई जाती है । लम्बित आवेदन/आवेदनों, यदि कोई हों, को भी निपटाया जाता है । खर्चे का कोई आदेश नहीं दिया जाता है ।

रिट याचिका मंजूर की गई ।

क.

———

संसद् के अधिनियम

हिन्दू विवाह अधिनियम, 1955

1955 का अधिनियम संख्यांक 25[1]

[18 मई, 1955]

हिन्दुओं के विवाह से संबंधित विधि को संशोधित और संहिताबद्ध करने के लिए अधिनियम

भारत गणराज्य के छठे वर्ष में संसद् द्वारा निम्नलिखित रूप में यह अधिनियमित हो :–

प्रारम्भिक

1. **संक्षिप्त नाम और विस्तार** – (1) यह अधिनियम हिन्दू विवाह अधिनियम, 1955 कहा जा सकेगा ।

(2) इसका विस्तार जम्मू-कश्मीर राज्य के सिवाय सम्पूर्ण भारत पर है और यह उन राज्यक्षेत्रों में जिन पर इस अधिनियम का विस्तार है, अधिवसित उन हिन्दुओं को भी लागू है जो उक्त राज्यक्षेत्रों के बाहर हों ।

2. **अधिनियम का लागू होना** – (1) यह अधिनियम लागू है –

(क) ऐसे किसी भी व्यक्ति को जो हिन्दू धर्म के किसी भी रूप या विकास के अनुसार, जिसके अन्तर्गत वीरशैव, लिंगायत अथवा ब्रह्मसमाज, प्रार्थनासमाज या आर्यसमाज के अनुयायी भी आते हैं, धर्मतः हिन्दू हो ;

(ख) ऐसे किसी भी व्यक्ति को जो धर्मतः जैन, बौद्ध या सिक्ख हो ; तथा

(ग) ऐसे किसी भी अन्य व्यक्ति जो उन राज्यक्षेत्रों में, जिन पर इस अधिनियम का विस्तार है, अधिवसित हो और धर्मतः मुस्लिम, क्रिश्चियन, पारसी या यहूदी न हो, जब तक कि यह साबित न कर

---

[1] इस अधिनियम का, 1963 के विनियम सं. 6 की धारा 2 और अनुसूची 1 द्वारा (1.7.1965 से) दादरा और नागर हवेली पर और 1963 के विनियम सं. 7 की धारा 3 और अनुसूची 1 द्वारा (1.10.1963 से) उपांतरों सहित पांडिचेरी पर विस्तार किया गया ।

दिया जाए कि यदि यह अधिनियम पारित न किया गया होता तो ऐसा कोई भी व्यक्ति एतस्मिन् उपबन्धित किसी भी बात के बारे में हिन्दू विधि या उस विधि के भागरूप किसी रूढ़ि या प्रथा द्वारा शासित न होता ।

स्पष्टीकरण – निम्नलिखित व्यक्ति धर्मतः, यथास्थिति, हिन्दू, बौद्ध, जैन या सिक्ख है :–

(क) कोई भी अपत्य, धर्मज या अधर्मज, जिसके माता-पिता दोनों ही धर्मतः हिन्दू, बौद्ध, जैन या सिक्ख हो ;

(ख) कोई भी अपत्य, धर्मज या अधर्मज, जिसके माता-पिता में से कोई एक धर्मतः हिन्दू, बौद्ध, जैन या सिक्ख हो और जो उस जनजाति, समुदाय, समूह या कुटुंब के सदस्य के रूप में पला हो जिसका वह माता या पिता सदस्य है या था ; तथा

(ग) कोई भी ऐसा व्यक्ति जो हिन्दू, बौद्ध, जैन या सिक्ख धर्म में संपरिवर्तित या प्रतिसंपरिवर्तित हो गया हो ।

(2) उपधारा (1) में अन्तर्विष्ट किसी बात के होते हुए भी इस अधिनियम में अंतर्विष्ट कोई भी बात किसी ऐसी जनजाति के सदस्यों को जो संविधान के अनुच्छेद 366 के खंड (25) के अर्थ के अंतर्गत अनुसूचित जनजाति हो, लागू न होगी जब तक कि केन्द्रीय सरकार शासकीय राजपत्र में अधिसूचना द्वारा अन्यथा निर्दिष्ट न कर दे ।

(3) इस अधिनियम के किसी भी प्रभाग में आए हुए "हिन्दू" पद का ऐसा अर्थ लगाया जाएगा मानो उसके अंतर्गत ऐसा व्यक्ति आता हो जो, यद्यपि धर्मतः हिन्दू नहीं है तथापि, ऐसा व्यक्ति है जिसे यह अधिनियम इस धारा के अंतर्विष्ट उपबंधों के आधार पर लागू होता है ।

3. **परिभाषाएं** – इस अधिनियम में, जब तक कि संदर्भ से अन्यथा अपेक्षित न हो, –

(क) "रूढ़ि" और "प्रथा", पद ऐसे किसी भी नियम का संज्ञान कराते हैं जिसने दीर्घकाल तक निरंतर और एकरूपता से अनुपालित किए जाने के कारण किसी स्थानीय क्षेत्र, जनजाति, समुदाय, समूह या कुटुंब के हिन्दुओं में विधि का बल अभिप्राप्त कर लिया हो :

परंतु यह तब जब कि वह नियम निश्चित हो और अयुक्तियुक्त

या लोकनीति के विरुद्व न हो : तथा

परंतु यह और भी कि ऐसे नियम की दशा में जो एक कुटुंब को ही लागू हो, उसकी निरंतरता उस कुटुंब द्वारा बंद न कर दी गई हो ;

(ख) "जिला न्यायालय" से अभिप्रेत है ऐसे किसी क्षेत्र में, जिसके लिए कोई नगर सिविल न्यायालय हो, वह न्यायालय और अन्य किसी क्षेत्र में आरंभिक अधिकारिता का प्रधान सिविल न्यायालय तथा इसके अंतर्गत ऐसा कोई भी अन्य सिविल न्यायालय आता है जिसे राज्य सरकार शासकीय राजपत्र में अधिसूचना द्वारा इस अधिनियम में व्यवहृत बातों के बारे में अधिकारितायुक्त विनिर्दिष्ट कर दे ;

(ग) "पूर्ण रक्त" और "अर्ध रक्त" – कोई भी दो व्यक्ति एक दूसरे से पूर्ण रक्त से संबंधित तब कहे जाते हैं जब कि वे एक ही पूर्वज से एक ही पत्नी द्वारा अवजनित हों और अर्थ रक्त से तब जब कि वह एक ही पूर्वज से किन्तु भिन्न पत्नियों द्वारा अवजनित हों ;

(घ) "एकोदर रक्त" – दो व्यक्ति एक से एकोदर रक्त से संबंधित तब कहे जाते हैं जब कि वे एक ही पूर्वजा से किन्तु भिन्न पतियों द्वारा अवजनित हों ;

स्पष्टीकरण – खंड (ग) और (घ) में "पूर्वज" के अंतर्गत पिता और "पूर्वजा" के अंतर्गत माता आती है ;

(ङ) "विहित" से अभिप्रेत है इस अधिनियम के अधीन बनाए गए नियमों द्वारा विहित ;

(च) (i) "सपिंड नातेदारी", जब निर्देश किसी व्यक्ति के प्रति हो तो, माता के माध्यम से उसकी ऊपरली ओर की परंपरा में तीसरी पीढ़ी तक (जिसके अंतर्गत तीसरी पीढ़ी भी आती है) और पिता के माध्यम से उसकी ऊपरली ओर की परंपरा में पांचवीं पीढ़ी तक (जिसके अंतर्गत पांचवीं पीढ़ी भी आती है) जाती है, हर एक दशा में वंश परंपरा सम्पृक्त व्यक्ति से, जिसे पहले पीढ़ी का गिना जाएगा, ऊपर की ओर चलेगी ;

(ii) दो व्यक्ति एक दूसरे के "सपिंड" तब कहे जाते हैं जबकि या तो एक उनमें से दूसरे का सपिंड नातेदारी की सीमाओं के भीतर पूर्वपुरुष हो या जब कि उनका ऐसा कोई एक ही पारंपरिक पूर्वपुरुष हो, जो, निर्देश उनमें से जिस किसी के भी प्रति हो, उससे सपिंड

नातेदारी की सीमाओं के भीतर हो ;

(छ) "प्रतिषिद्ध नातेदारी की डिग्रियां" – दो व्यक्ति प्रतिषिद्ध नातेदारी की डिग्रियों के भीतर कहे जाते हैं –

(i) यदि एक उनमें से दूसरे का पारंपरिक पूर्वपुरुष हो ; या

(ii) यदि एक उनमें से दूसरे के पारंपरिक पूर्वपुरुष या वंशज की पत्नी या पति रहा हो ; या

(iii) यदि एक उनमें से दूसरे के भाई की या पिता अथवा माता के भाई की, या पितामह अथवा पितामही के भाई की या मातामह अथवा मातामही के भाई की पत्नी रही हो ; या

(iv) यदि वे भाई और बहिन, ताया, चाचा और भतीजी, मामा और भांजी, फूफी और भतीजा, मौसी और भांजा या भाई-बहिन के अपत्य, भाई-भाई के अपत्य अथवा बहिन-बहिन के अपत्य हों ;

स्पष्टीकरण – खंड (च) और (छ) के प्रयोजनों के लिए "नातेदारी" के अंतर्गत आती हैं –

(i) पूर्ण रक्त की नातेदारी, तथैव अर्ध या एकोदर रक्त की नातेदारी ;

(ii) धर्मज रक्त की नातेदारी, तथैव अधर्मज रक्त की नातेदारी ;

(iii) रक्तजन्य नातेदारी, तथैव दत्तक नातेदारी ;

और उन खंडों में नातेदारी संबंधी सभी पदों का अर्थ तदनुसार लगाया जाएगा ।

4. **अधिनियम का अध्यारोही प्रभाव** – इस अधिनियम में अभिव्यक्त रूप से अन्यथा उपबंधित के सिवाय –

(क) हिन्दू विधि का कोई ऐसा शास्त्रवाक्य, नियम या निर्वचन या उस विधि की भागरूप कोई भी रूढ़ि या प्रथा जो इस अधिनियम के प्रारंभ के अव्यवहित पूर्व प्रवृत्त रही हो ऐसे किसी भी विषय के बारे में, जिसके लिए इस अधिनियम में उपबन्ध किया गया है, प्रभावहीन हो जाएगी ;

(ख) इस अधिनियम के प्रारंभ के अव्यवहित पूर्व प्रवृत्त कोई भी अन्य विधि, वहां तक प्रभावहीन हो जाएगी जहां तक कि वह इस अधिनियम में अंतर्विष्ट उपबंधों में से किसी से भी असंगत हो ।

हिन्दू विवाह

5. **हिन्दू विवाह के लिए शर्तें** – दो हिन्दुओं के बीच विवाह अनुष्ठापित किया जा सकेगा यदि निम्नलिखित शर्तें पूरी हो जाएं, अर्थात् :–

(i) विवाह के समय दोनों पक्षकारों में से, न तो वर की कोई जीवित पत्नी हो और न वधू का कोई जीवित पति हो ;

[1][(ii) विवाह के समय दोनों पक्षकारों में से कोई पक्षकार –

(क) चित्त-विकृति के परिणामस्वरूप विधिमान्य सम्मति देने में असमर्थ न हो ; या

(ख) विधिमान्य सम्मति देने में समर्थ होने पर भी इस प्रकार के या इस हद तक मानसिक विकार से पीड़ित न रहा हो कि वह विवाह और सन्तानोत्पत्ति के लिए अयोग्य हो ; या

(ग) उसे उन्मत्तता [2]*** का बारबार दौरा न पड़ता हो ;]

(iii) विवाह के समय वर ने [3][इक्कीस वर्ष] की आयु और वधू ने [4][अठारह वर्ष] की आयु पूरी कर ली हो ;

(iv) जब तक कि दोनों पक्षकारों में से हर एक को शासित करने वाली रूढ़ि या प्रथा से उन दोनों के बीच विवाह अनुज्ञात न हो, वे प्रतिषिद्ध नातेदारी डिग्रियों के भीतर न हों ;

(v) जब तक कि दोनों पक्षकारों में से हर एक को शासित करने वाली रूढ़ि या प्रथा से उन दोनों के बीच विवाह अनुज्ञात न हो, वे एक दूसरे के सपिण्ड न हों ;

[5] * * * *

6. [**विवाह में अभिभावकता** ।] – बाल विवाह अवरोध (संशोधन)

---

[1] 1976 के अधिनियम सं. 68 की धारा 2 द्वारा खण्ड (ii) के स्थान पर प्रतिस्थापित ।

[2] 1999 के अधिनियम सं. 39 की धारा 2 द्वारा (29.12.1999 से) "या मिरगी" शब्दों का लोप किया गया ।

[3] 1978 के अधिनियम सं. 2 की धारा 6 और अनुसूची द्वारा (1.10.1978 से) "अठारह वर्ष" के स्थान पर प्रतिस्थापित ।

[4] 1978 के अधिनियम सं. 2 की धारा 6 और अनुसूची द्वारा (1.10.1978 से) "पन्द्रह वर्ष" के स्थान पर प्रतिस्थापित ।

[5] 1978 के अधिनियम सं. 2 की धारा 6 और अनुसूची द्वारा (1.10.1978 से) खण्ड (vi) का लोप किया गया ।

अधिनियम, 1978 (1978 का 2) की धारा 6 और अनुसूची द्वारा (1.10.1978 से) निरसित ।

7. **हिन्दू विवाह के लिए कर्मकांड** – (1) हिन्दू विवाह उसके पक्षकारों में से किसी को भी रूढ़िगत रीतियों और कर्मकांड के अनुसार अनुष्ठापित किया जा सकेगा ।

(2) जहां कि ऐसी रीतियों और कर्मकांड के अन्तर्गत सप्तपदी (अर्थात् अग्नि के समक्ष वर और वधू द्वारा संयुक्ततः सात पद चलना) आती हो वहां विवाह पूर्ण और आबद्धकर तब होता है जब सातवां पद चल लिया जाता है ।

8. **हिन्दू विवाहों का रजिस्ट्रीकरण** – (1) राज्य सरकार हिन्दू विवाहों का साबित किया जाना सुकर करने के प्रयोजन से ऐसे नियम बना सकेगी जो यह उपबन्धित करे कि ऐसे किसी विवाह के पक्षकार अपने विवाह से सम्बद्ध विशिष्टियों की इस प्रयोजन के लिए रखे गए हिन्दू विवाह रजिस्टर में ऐसी रीति में और ऐसी शर्तों के अध्यधीन, जैसी कि विहित की जाएं, प्रविष्टि करा सकेंगे ।

(2) उपधारा (1) में अन्तर्विष्ट किसी बात के होते हुए भी, यदि राज्य सरकार की यह राय हो कि ऐसा करना आवश्यक या समीचीन है तो वह यह उपबन्ध कर सकेगी कि उपधारा (1) में निर्दिष्ट विशिष्टियों का प्रविष्ट किया जाना उस राज्य में या उसके किसी भाग विशेष में, चाहे सभी दशाओं में, चाहे ऐसी दशाओं में, जो विनिर्दिष्ट की जाएं, वैवश्यक होगा और जहां कि कोई ऐसा निदेश निकाला गया हो, वहां इस निमित्त बनाए गए किसी नियम का उल्लंघन करने वाला व्यक्ति जुर्माने से, जो कि पच्चीस रुपए तक का हो सकेगा, दंडनीय होगा ।

(3) इस धारा के अधीन बनाए गए सभी नियम बनाए जाने के पश्चात् यथाशीघ्र राज्य विधान-मण्डल के समक्ष रखे जाएंगे ।

(4) हिन्दू विवाह रजिस्टर निरीक्षण के लिए सभी युक्तियुक्त समय पर खुला रहेगा और अपने में अन्तर्विष्ट कथनों के साक्ष्य के तौर पर ग्राह्य होगा तथा उसमें से प्रमाणित उद्धरण, आवेदन करने और रजिस्ट्रार को विहित फीस का संदाय करने पर, उसके द्वारा दिए जाएंगे ।

(5) इस धारा में अंतर्विष्ट किसी बात के होते हुए भी, ऐसी प्रविष्टि करने में हुआ लोप किसी हिन्दू विवाह की विधिमान्यता पर प्रभाव न डालेगा ।

दाम्पत्य अधिकारों का प्रत्यास्थापन और न्यायिक पृथक्करण

9. **दाम्पत्य अधिकारों का प्रत्यास्थापन** – [1]*** जब कि पति या पत्नी ने अपने को दूसरे के साहचर्य से किसी युक्तियुक्त प्रतिहेतु के बिना प्रत्याहृत कर लिया हो तब व्यथित पक्षकार दाम्पत्य अधिकारों के प्रत्यास्थापन के लिए जिला न्यायालय में अर्जी द्वारा आवेदन कर सकेगा और न्यायालय ऐसी अर्जी में किए गए कथनों के सत्य के बारे में तथा इस बात के बारे में कि इसके लिए कोई वैध आधार नहीं है कि आवेदन मंजूर क्यों न कर लिया जाए अपना समाधान हो जाने पर दाम्पत्य अधिकारों का प्रत्यास्थापन डिक्री कर सकेगा ।

[2][**स्पष्टीकरण** – जहां यह प्रश्न उठता है कि क्या साहचर्य के प्रत्याहरण के लिए युक्तियुक्त प्रतिहेतु है, वहां युक्तियुक्त प्रतिहेतु साबित करने का भार उस व्यक्ति पर होगा जिसने साहचर्य से प्रत्याहरण किया है ।]

[3]* * * * *

10. **न्यायिक पृथक्करण** – [4][(1) विवाह का कोई पक्षकार, चाहे वह विवाह इस अधिनियम के प्रारम्भ के पूर्व या पश्चात् अनुष्ठापित हुआ हो, धारा 13 की उपधारा (1) में विनिर्दिष्ट किसी आधार पर और पत्नी की दशा में उक्त धारा की उपधारा (2) में विनिर्दिष्ट किसी आधार पर भी, जिस पर विवाह-विच्छेद के लिए अर्जी पेश की जा सकती थी, न्यायिक पृथक्करण की डिक्री के लिए प्रार्थना करते हुए अर्जी पेश कर सकेगा ।]

(2) जहां कि न्यायिक पृथक्करण की डिक्री पारित हो गई हो, वहां अर्जीदार पर इस बात की बाध्यता न होगी कि वह प्रत्यर्थी के साथ सहवास करे, किन्तु दोनों पक्षकारों में से किसी के भी अर्जी द्वारा आवेदन करने पर तथा ऐसी अर्जी में किए गए कथनों की सत्यता के बारे में अपना समाधान हो जाने पर न्यायालय, यदि वह ऐसा करना न्यायसंगत और युक्तियुक्त समझे तो, डिक्री को विखण्डित कर सकेगा ।

विवाह की अकृतता और विवाह-विच्छेद

11. **शून्य विवाह** – इस अधिनियम के प्रारम्भ के पश्चात् अनुष्ठापित कोई भी विवाह, यदि वह धारा 5 के खण्ड (i), (iv) और (v) में विनिर्दिष्ट शर्तों में

---

[1] 1976 के अधिनियम सं. 68 की धारा 3 द्वारा कोष्ठक और अंक "(1)" का लोप किया गया ।

[2] 1976 के अधिनियम सं. 68 की धारा 3 द्वारा अन्तःस्थापित ।

[3] 1976 के अधिनियम सं. 68 की धारा 3 द्वारा उपधारा (2) का लोप किया गया ।

[4] 1976 के अधिनियम सं. 68 की धारा 4 द्वारा उपधारा (1) के स्थान पर प्रतिस्थापित ।

से किसी एक का भी उल्लंघन करता हो तो, अकृत और शून्य होगा और विवाह के किसी पक्षकार द्वारा [1][दूसरे पक्षकार के विरुद्ध] उपस्थापित अर्जी पर अकृतता की डिक्री द्वारा ऐसा घोषित किया जा सकेगा ।

12. **शून्यकरणीय विवाह** – (1) कोई भी विवाह, वह इस अधिनियम के प्रारम्भ के चाहे पूर्व अनुष्ठापित हुआ हो चाहे पश्चात्, निम्नलिखित आधारों में से किसी पर भी शून्यकरणीय होगा और अकृतता की डिक्री द्वारा बातिल किया जा सकेगा :–

[2][(क) कि प्रत्यर्थी की नपुंसकता के कारण विवाहोत्तर संभोग नहीं हुआ है ; या]

(ख) कि विवाह धारा 5 के खण्ड (ii) में विनिर्दिष्ट शर्तों का उल्लंघन करता है ; या

(ग) कि अर्जीदार की सम्मति या, जहां कि [3][धारा 5 जिस रूप में बाल विवाह अवरोध (संशोधन) अधिनियम, 1978 (1978 का 2) के प्रारम्भ के ठीक पूर्व विद्यमान थी उस रूप में उसके अधीन अर्जीदार के विवाहार्थ संरक्षक की सम्मति अपेक्षित हो] वहां ऐसे संरक्षक की सम्मति, बल प्रयोग द्वारा [4][या कर्मकाण्ड की प्रकृति के बारे में या प्रत्यर्थी से संबंधित किसी तात्विक तथ्य या परिस्थिति के बारे में कपट द्वारा] अभिप्राप्त की गई थी ; या

(घ) कि प्रत्यर्थी विवाह के समय अर्जीदार से भिन्न किसी व्यक्ति द्वारा गर्भवती थी ।

(2) उपधारा (1) में किसी बात के होते हुए भी, विवाह के बातिलीकरण की कोई अर्जी –

(क) उपधारा (1) के खण्ड (ग) में विनिर्दिष्ट आधार पर ग्रहण न की जाएगी, यदि –

(i) अर्जी, यथास्थिति, बल प्रयोग के प्रवर्तनहीन हो जाने के

---

[1] 1976 के अधिनियम सं. 68 की धारा 5 द्वारा अन्तःस्थापित ।

[2] 1976 के अधिनियम सं. 68 की धारा 6 द्वारा खण्ड (क) के स्थान पर प्रतिस्थापित ।

[3] 1978 के अधिनियम सं. 2 की धारा 6 और अनूसूची द्वारा (1.10.1978 से) ''धारा 5 के अधीन अर्जीदार के विवाहार्थ संरक्षक की सम्मति अपेक्षित हो'' के स्थान पर प्रतिस्थापित ।

[4] 1976 के अधिनियम सं. 68 की धारा 6 द्वारा ''या कपट द्वारा'' के स्थान पर प्रतिस्थापित ।

या कपट का पता चल जाने के एकाधिक वर्ष के पश्चात् दी जाए ; या

(ii) अर्जीदार, यथास्थिति, बल प्रयोग के प्रवर्तनहीन हो जाने के या कपट का पता चल जाने के पश्चात् विवाह के दूसरे पक्षकार के साथ अपनी पूर्ण सम्मति से पति या पत्नी के रूप में रहा या रही है ;

(ख) उपधारा (1) के खण्ड (घ) में विनिर्दिष्ट आधार पर तब तक ग्रहण न की जाएगी जब तक कि न्यायालय का यह समाधान न हो जाए कि –

(i) अर्जीदार विवाह के समय अभिकथित तथ्यों से अनभिज्ञ था ;

(ii) कार्यवाही, इस अधिनियम के प्रारम्भ के पूर्व अनुष्ठापित विवाह की दशा में, ऐसे प्रारम्भ के एक वर्ष के भीतर और ऐसे प्रारम्भ के पश्चात् अनुष्ठापित विवाहों की दशा में, विवाह की तारीख से एक वर्ष के भीतर संस्थित की गई है ; और

(iii) [1][उक्त आधार] के अस्तित्व का अर्जीदार को पता चलने के समय से अर्जीदार की सम्मति से कोई वैवाहिक संभोग नहीं हुआ है ।

13. **विवाह-विच्छेद** – (1) कोई भी विवाह, वह इस अधिनियम के प्रारम्भ के चाहे पूर्व अनुष्ठापित हुआ हो चाहे पश्चात्, पति अथवा पत्नी द्वारा उपस्थापित अर्जी पर विवाह-विच्छेद की डिक्री द्वारा इस आधार पर विघटित किया जा सकेगा कि –

[2][(i) दूसरे पक्षकार ने विवाह के अनुष्ठापन के पश्चात् अपने पति या अपनी पत्नी से भिन्न किसी व्यक्ति के साथ स्वेच्छया मैथुन किया है ; या

(iक) दूसरे पक्षकार ने विवाह के अनुष्ठापन के पश्चात् अर्जीदार के साथ क्रूरता का व्यवहार किया है ; या

(iख) दूसरे पक्षकार ने अर्जी के पेश किए जाने के अव्यवहित पूर्व

---

[1] 1976 के अधिनियम सं. 68 की धारा 6 द्वारा "डिक्री के आधारों" के स्थान पर प्रतिस्थापित ।

[2] 1976 के अधिनियम सं. 68 की धारा 7 द्वारा खंड (i) के स्थान पर प्रतिस्थापित ।

कम से कम दो वर्ष की निरन्तर कालावधि पर अर्जीदार को अभित्यक्त रखा है ; या]

(ii) दूसरा पक्षकार अन्य धर्म में संपरिवर्तित हो जाने के कारण हिन्दू नहीं रह गया है ; या

[1][(iii) दूसरा पक्षकार असाध्य रूप से विकृत-चित्त रहा है अथवा निरन्तर या आंतरायिक रूप से इस प्रकार के और इस हद तक मानसिक विकार से पीड़ित रहा है कि अर्जीदार से युक्तियुक्त रूप से यह आशा नहीं की जा सकती है कि वह प्रत्यर्थी के साथ रहे ।

स्पष्टीकरण – इस खण्ड में, –

(क) "मानसिक विकार" पद से मानसिक बीमारी, मस्तिष्क का संरोध या अपूर्ण विकास, मनोविकृति या मस्तिष्क का कोई अन्य विकार या निःशक्तता अभिप्रेत है और इसके अंतर्गत विखंडित मनस्कता भी है ;

(ख) "मनोविकृति" पद से मस्तिष्क का दीर्घस्थायी विकार या निःशक्तता (चाहे इसमें बुद्धि की अवसामान्यता हो या नहीं) अभिप्रेत है जिसके परिणामस्वरूप दूसरे पक्षकार का आचरण असामान्य रूप से आक्रामक या गंभीर रूप से अनुत्तरदायी हो जाता है और चाहे उसके लिए चिकित्सीय उपचार अपेक्षित हो या नहीं अथवा ऐसा उपचार किया जा सकता हो या नहीं ; या]

(iv) [2][दूसरा पक्षकार] उग्र और असाध्य कुष्ठ से पीड़ित रहा है ; या

(v) [2][दूसरा पक्षकार] संचारी रूप से रजित रोग से पीड़ित रहा है ; या

(vi) दूसरा पक्षकार किसी धार्मिक पंथ के अनुसार प्रव्रज्या ग्रहण कर चुका है ; या

(vii) दूसरा पक्षकार जीवित है या नहीं इसके बारे में सात वर्ष या उससे अधिक की कालावधि के भीतर उन्होंने कुछ नहीं सुना है जिन्होंने उसके बारे में यदि वह पक्षकार जीवित होता तो स्वाभाविकतः

---

[1] 1976 के अधिनियम सं. 68 की धारा 7 द्वारा अन्तः खंड (iii) के स्थान पर प्रतिस्थापित ।

[2] 1976 के अधिनियम सं. 68 की धारा 7 द्वारा कतिपय शब्दों के स्थान पर प्रतिस्थापित ।

सुना होता । [1]***

[2]* * * * *

[3][**स्पष्टीकरण** – इस उपधारा में "अभित्यजन" पद से विवाह के दूसरे पक्षकार द्वारा अर्जीदार का ऐसा अभित्यजन अभिप्रेत है जो युक्तियुक्त कारण के बिना और ऐसे पक्षकार की सम्मति के बिना या इच्छा के विरुद्ध हो और इसके अंतर्गत विवाह के दूसरे पक्षकार द्वारा जानबूझकर अर्जीदार की उपेक्षा करना भी है और इस पद के व्याकरणिक रूपभेदों तथा सजातीय पदों के अर्थ तदनुसार लगाए जाएंगे ।]

[4][(1क) विवाह का कोई भी पक्षकार, विवाह इस अधिनियम के प्रारम्भ के चाहे पूर्व अनुष्ठापित हुआ हो चाहे पश्चात्, विवाह-विच्छेद की डिक्री द्वारा विवाह के विघटन के लिए इस आधार पर भी अर्जी उपस्थापित कर सकेगा –

(i) कि ऐसी कार्यवाही में पारित, जिसके उस विवाह के पक्षकार, पक्षकार थे, न्यायिक पृथक्करण की डिक्री के धारण के पश्चात् [5][एक वर्ष] या उससे ऊपर की कालावधि भर उन पक्षकारों के बीच सहवास का कोई पुनरारम्भ नहीं हुआ है; या

(ii) कि ऐसी कार्यवाही में पारित, जिसके उस विवाह के पक्षकार, पक्षकार थे, दाम्पत्याधिकार के प्रत्यास्थापन की डिक्री के पश्चात् [5][एक वर्ष] या उससे ऊपर की कालावधि भर, उन पक्षकारों के बीच दाम्पत्याधिकारों का कोई प्रत्यास्थापन नहीं हुआ है ।]

(2) पत्नी विवाह-विच्छेद की डिक्री द्वारा अपने विवाह के विघटन के लिए इस आधार पर भी अर्जी उपस्थापित कर सकेगी –

(i) कि इस अधिनियम के प्रारंभ के पूर्व अनुष्ठापित विवाह की दशा

---

[1] 1964 के अधिनियम सं. 44 की धारा 2 द्वारा "या" शब्द का लोप किया गया ।

[2] 1964 के अधिनियम सं. 44 की धारा 2 द्वारा खंड (viii) और खंड (ix) का लोप किया गया ।

[3] 1976 के अधिनियम सं. 68 की धारा 7 द्वारा अंतःस्थापित ।

[4] 1964 के अधिनियम सं. 44 की धारा 2 द्वारा अंतःस्थापित ।

[5] 1976 के अधिनियम सं. 68 की धारा 7 द्वारा "दो वर्ष" के स्थान पर प्रतिस्थापित ।

में, पति ने ऐसे प्रारंभ के पूर्व फिर विवाह कर लिया था या कि अर्जीदार के विवाह के अनुष्ठापन के समय पति की कोई ऐसी दूसरी पत्नी जीवित थी जिसके साथ उसका विवाह ऐसे प्रारंभ के पूर्व हुआ था :

परन्तु यह तब जब कि दोनों दशाओं में दूसरी पत्नी अर्जी के उपस्थापन के समय जीवित हो ; या

(ii) कि पति विवाह के अनुष्ठापन के पश्चात् बलात्संग, गुदामैथुन या पशुगमन का [1][दोषी रहा है ; या]

[2][(iii) कि हिन्दू दत्तक तथा भरण-पोषण अधिनियम, 1956(1956 का 78) की धारा 18 के अधीन वाद में या दण्ड प्रक्रिया संहिता, 1973 (1974 का 2) की धारा 125 के अधीन [या दण्ड प्रक्रिया संहिता, 1898 (1898 का 5) की तत्समान धारा 488 के अधीन] कार्यवाही में, पत्नी को भरण-पोषण दिलवाने के लिए पति के विरुद्ध, यथास्थिति, डिक्री या आदेश इस बात के होते हुए भी पारित किया गया है कि वह अलग रहती थी और ऐसी डिक्री या आदेश पारित किए जाने के समय से एक वर्ष या उससे ऊपर की कालावधि भर पक्षकारों के बीच सहवास का पुनरारम्भ नहीं हुआ है ;

(iv) कि उसका विवाह (चाहे विवाहोत्तर संभोग हुआ हो या नहीं) उसकी पन्द्रह वर्ष की आयु हो जाने के पूर्व अनुष्ठापित किया गया था और उसने पन्द्रह वर्ष की आयु प्राप्त करने के पश्चात् किन्तु अठारह वर्ष की आयु प्राप्त करने के पूर्व विवाह का निराकरण कर दिया है ।

स्पष्टीकरण – यह खण्ड उस विवाह को भी लागू होगा जो विवाह विधि (संशोधन) अधिनियम, 1976 (1976 का 68) के प्रारंभ के पूर्व या उसके पश्चात् अनुष्ठापित किया गया है ।]

[3][13क. **विवाह-विच्छेद की कार्यवाहियों में प्रत्यर्थी को वैकल्पिक अनुतोष** – इस अधिनियम के अधीन किसी कार्यवाही में विवाह-विच्छेद की डिक्री द्वारा विवाह के विघटन के लिए अर्जी पर, उस दशा को छोड़कर जिसमें अर्जी धारा 13 की उपधारा (1) के खण्ड (ii), (vi) और (vii) में वर्णित आधारों पर है, यदि न्यायालय मामले की परिस्थितियों को ध्यान में

---

[1] 1976 के अधिनियम सं. 68 की धारा 7 द्वारा "दोषी रहा है" के स्थान पर प्रतिस्थापित ।

[2] 1976 के अधिनियम सं. 68 की धारा 7 द्वारा अंतःस्थापित ।

[3] 1976 के अधिनियम सं. 68 की धारा 8 द्वारा अंतःस्थापित ।

रखते हुए यह न्यायसंगत समझता है तो, वह विवाह-विच्छेद की डिक्री के बजाय न्यायिक पृथक्करण के लिए डिक्री पारित कर सकेगा ।

13ख. **पारस्परिक सम्मति से विवाह-विच्छेद** – (1) इस अधिनियम के उपबन्धों के अधीन रहते हुए यह है कि विवाह के दोनों पक्षकार मिलकर विवाह-विच्छेद की डिक्री द्वारा विवाह के विघटन के लिए अर्जी, चाहे ऐसा विवाह, विवाह विधि (संशोधन) अधिनियम, 1976 के प्रारंभ के पूर्व या उसके पश्चात् अनुष्ठापित किया गया हो, जिला न्यायालय में, इस आधार पर पेश कर सकेंगे कि वे एक वर्ष या उससे अधिक समय से अलग-अलग रह रहे हैं और वे एक साथ नहीं रह सके हैं तथा वे इस बात के लिए परस्पर सहमत हो गए हैं कि विवाह का विघटन कर दिया जाना चाहिए ।

(2) उपधारा (1) में निर्दिष्ट अर्जी के पेश किए जाने की तारीख से छह मास के पश्चात् और उस तारीख से अठारह मास के पूर्व दोनों पक्षकारों द्वारा किए गए प्रस्ताव पर, यदि इस बीच अर्जी वापस नहीं ले ली गई है तो, न्यायालय पक्षकारों को सुनने के पश्चात् और ऐसी जांच करने के पश्चात्, जो वह ठीक समझे, अपना यह समाधान कर लेने पर कि विवाह अनुष्ठापित हुआ है और अर्जी में किए गए प्रकथन सही हैं, यह घोषणा करते हुए विवाह-विच्छेद की डिक्री पारित करेगा कि विवाह डिक्री की तारीख से विघटित हो जाएगा ।]

14. **विवाह से एक वर्ष के भीतर विवाह-विच्छेद के लिए कोई अर्जी उपस्थापित न की जाएगी** – (1) इस अधिनियम में अंतर्विष्ट किसी बात के होते हुए भी, कोई भी न्यायालय विवाह-विच्छेद की डिक्री द्वारा विवाह के विघटन की कोई अर्जी ग्रहण करने के लिए तब तक सक्षम न होगा [1][जब तक कि विवाह की तारीख से उस अर्जी के पेश किए जाने की तारीख तक एक वर्ष बीत न चुका हो] :

परन्तु न्यायालय उन नियमों के अनुसार किए गए आवेदन पर, जो उच्च न्यायालय द्वारा इस निमित्त बनाए जाएं, किसी अर्जी का, विवाह की तारीख से [1][एक वर्ष बीतने के पूर्व] भी इस आधार पर उपस्थापित किया जाना अनुज्ञात कर सकेगा कि मामला अर्जीदार के लिए असाधारण कष्ट का है या प्रत्यर्थी की असाधारण दुराचारिता से युक्त है; किन्तु यदि अर्जी की सुनवाई के समय न्यायालय को यह प्रतीत हो कि अर्जीदार ने अर्जी को उपस्थापित करने की इजाजत किसी दुर्व्यपदेशन या मामले की प्रकृति के प्रच्छादन द्वारा अभिप्राप्त की थी तो वह, डिक्री देने की दशा में, इस शर्त के अध्यधीन डिक्री दे सकेगा कि

[1] 1976 के अधिनियम सं. 68 की धारा 9 द्वारा कतिपय शब्दों के स्थान पर प्रतिस्थापित ।

डिक्री तब तक संप्रभाव न होगी जब तक कि विवाह की तारीख से [1][एक वर्ष का अवसान] न हो जाए अथवा उस अर्जी को ऐसी किसी अर्जी पर कोई प्रतिकूल प्रभाव डाले बिना खारिज कर सकेगा जो [1][उक्त एक वर्ष के अवसान] के पश्चात् उन्हीं या सारतः उन्हीं तथ्यों पर दी जाए जो ऐसे खारिज की गई अर्जी के समर्थन में अभिकथित किए गए थे ।

(2) विवाह की तारीख से [1][एक वर्ष के अवसान] से पूर्व विवाह-विच्छेद की अर्जी उपस्थापित करने की इजाजत के लिए इस धारा के अधीन किए गए किसी आवेदन का निपटारा करने में न्यायालय उस विवाह से उत्पन्न किसी अपत्य के हितों पर तथा इस बात पर ध्यान रखेगा कि पक्षकारों के बीच [1][उक्त एक वर्ष] के अवसान से हुई पूर्व मेल-मिलाप की कोई युक्तियुक्त संभाव्यता है या नहीं ।

15. **कब विवाह-विच्छेद प्राप्त व्यक्ति पुनः विवाह कर सकेगा** – जब कि विवाह-विच्छेद की डिक्री द्वारा विवाह विघटित कर दिया गया हो और या तो डिक्री के विरुद्ध अपील करने का कोई अधिकार ही न हो या यदि अपील का ऐसा अधिकार हो तो अपील करने के समय का कोई अपील उपस्थापित हुए बिना अवसान हो गया हो या अपील की तो गई हो किन्तु खारिज कर दी गई हो तब विवाह के किसी पक्षकार के लिए पुनः विवाह करना विधिपूर्ण होगा ।

[2]* * * * *

[3][16. **शून्य और शून्यकरणीय विवाहों के अपत्यों की धर्मजता** – (1) इस बात के होते हुए भी कि विवाह धारा 11 के अधीन अकृत और शून्य है, ऐसे विवाह का ऐसा अपत्य धर्मज होगा, जो विवाह के विधिमान्य होने की दशा में धर्मज होता चाहे ऐसे अपत्य का जन्म विवाह विधि (संशोधन) अधिनियम, 1976 के प्रारंभ से पूर्व या उसके पश्चात् हुआ हो और चाहे उस विवाह के संबंध में अकृतता की डिक्री इस अधिनियम के अधीन मंजूर की गई हो या नहीं और चाहे वह विवाह इस अधिनियम के अधीन अर्जी से भिन्न आधार पर शून्य अभिनिर्धारित किया गया हो या नहीं ।

(2) जहां धारा 12 के अधीन शून्यकरणीय विवाह के संबंध में अकृतता की डिक्री मंजूर की जाती है वहां डिक्री की जाने से पूर्व जनित या गर्भाहित ऐसा कोई अपत्य, जो यदि विवाह डिक्री की तारीख को अकृत

---

[1] 1976 के अधिनियम सं. 68 की धारा 9 कतिपय शब्दों के स्थान पर प्रतिस्थापित ।

[2] 1976 के अधिनियम सं. 68 की धारा 10 द्वारा परन्तुक का लोप किया गया ।

[3] 1976 के अधिनियम सं. 68 की धारा 11 द्वारा धारा 16 के स्थान पर प्रतिस्थापित ।

किए जाने की बजाय विघटित कर दिया गया होता तो विवाह के पक्षकारों का धर्मज अपत्य होता, अकृतता की डिक्री होते हुए भी उनका धर्मज अपत्य समझा जाएगा ।

(3) उपधारा (1) या उपधारा (2) की किसी बात का यह अर्थ नहीं लगाया जाएगा कि वह ऐसे विवाह के किसी ऐसे अपत्य को, जो अकृत और शून्य है या जिसे धारा 12 के अधीन अकृतता की डिक्री द्वारा अकृत किया गया है, उसके माता-पिता से भिन्न किसी व्यक्ति की सम्पत्ति में या सम्पत्ति के लिए कोई अधिकार किसी ऐसी दशा में प्रदान करती है जिसमें कि यदि यह अधिनियम पारित न किया गया होता तो वह अपत्य अपने माता-पिता का धर्मज अपत्य न होने के कारण ऐसा कोई अधिकार रखने या अर्जित करने में असमर्थ होता ।]

17. **द्विविवाह के लिए दंड** – यदि इस अधिनियम के प्रारंभ के पश्चात् दो हिन्दुओं के बीच अनुष्ठापित किसी विवाह की तारीख पर ऐसे विवाह के किसी पक्षकार का पति या पत्नी जीवित था या थी तो ऐसा विवाह शून्य होगा और भारतीय दंड संहिता (1860 का 45) की धारा 494 और 495 के उपबन्ध उसे तदनुसार लागू होंगे ।

18. **हिन्दू विवाह की कतिपय अन्य शर्तों के उल्लंघन के लिए दंड** – हर व्यक्ति जो अपना कोई ऐसा विवाह उपाप्त करेगा जो धारा 5 के खण्ड (iii), (iv) [1][और (v)] में विनिर्दिष्ट शर्तों के उल्लंघन में इस अधिनियम के अधीन अनुष्ठापित किया गया हो वह –

(क) धारा 5 के खण्ड (iii) में विनिर्दिष्ट शर्त के उल्लंघन की दशा में, सादे कारावास से, जिसकी अवधि पन्द्रह दिन तक की हो सकेगी, या जुर्माने से, जो एक हजार रुपए तक का हो सकेगा, अथवा दोनों से,

(ख) धारा 5 के खण्ड (iv) या खण्ड (v) में विनिर्दिष्ट शर्त के उल्लंघन की दशा में, सादे कारावास से, जिसकी अवधि एक मास तक की हो सकेगी, या जुर्माने से, जो एक हजार रुपए तक का हो सकेगा, अथवा दोनों से । [2]***

---

[1] 1978 के अधिनियम सं. 2 की धारा 6 और अनुसूची द्वारा (1.10.1978 से) "(v) और (vi)" के स्थान पर प्रतिस्थापित ।

[2] 1978 के अधिनियम सं. 2 की धारा 6 और अनुसूची द्वारा (1.10.1978 से) "और" शब्द का लोप किया गया ।

[1]* * * * *

अधिकारिता और प्रक्रिया

[2][19. **वह न्यायालय जिसमें अर्जी उपस्थापित की जाएगी** – इस अधिनियम के अधीन हर अर्जी उस जिला न्यायालय के समक्ष पेश की जाएगी जिसकी मामूली आरंभिक सिविल अधिकारिता की स्थानीय सीमाओं के अन्दर –

(i) विवाह का अनुष्ठापन हुआ था; या

(ii) प्रत्यर्थी, अर्जी के पेश किए जाने के समय, निवास करता है; या

(iii) विवाह के पक्षकारों ने अंतिम बार एक साथ निवास किया था; या

[3][(iiiक) यदि पत्नी अर्जीदार है तो जहां वह अर्जी पेश किए जाने के समय निवास कर रही है, या]

(iv) अर्जीदार के अर्जी पेश किए जाने के समय निवास कर रहा है, यह ऐसे मामले में, जिसमें प्रत्यर्थी उस समय ऐसे राज्यक्षेत्र के बाहर निवास कर रहा है जिस पर इस अधिनियम का विस्तार है अथवा वह जीवित है या नहीं इसके बारे में सात वर्ष या उससे अधिक की कालावधि के भीतर उन्होंने कुछ नहीं सुना है, जिन्होंने उसके बारे में, यदि वह जीवित होता तो, स्वाभाविकतया सुना होता ।]

20. **अर्जियों की अन्तर्वस्तु और सत्यापन** – (1) इस धारा के अधीन उपस्थापित हर अर्जी उन तथ्यों को जिन पर अनुतोष का दावा आधारित हो इतने स्पष्ट तौर पर कथित करेगी जितना उस मामले की प्रकृति अनुज्ञात करे [4][और धारा 11 के अधीन अर्जी को छोड़कर] ऐसी हर अर्जी [यह भी कथित करेगी] कि अर्जीदार और विवाह के दूसरे पक्षकार के बीच कोई सन्धि नहीं है ।

(2) इस अधिनियम के अधीन दी जाने वाली हर अर्जी में अन्तर्विष्ट कथन वादपत्रों के सत्यापन के लिए विधि द्वारा अपेक्षित रीति से अर्जीदार या अन्य सक्षम व्यक्ति द्वारा सत्यापित किए जाएंगे और सुनवाई के समय साक्ष्य के रूप

---

[1] 1978 के अधिनियम सं. 2 की धारा 6 और अनुसूची द्वारा (1.10.1978 से) खण्ड (ग) का लोप किया गया ।

[2] 1976 के अधिनियम सं. 68 की धारा 12 द्वारा धारा 19 के स्थान पर प्रतिस्थापित ।

[3] 2003 के अधिनियम सं. 50 की धारा 4 द्वारा (23.12.2003 से) अंतःस्थापित ।

[4] 1976 के अधिनियम सं. 68 की धारा 13 द्वारा "और वह यह और भी कथित करेगी" के स्थान पर प्रतिस्थापित ।

में ग्राह्य होंगे ।

21. **1908 के अधिनियम संख्यांक 5 का लागू होना** – इस अधिनियम में अन्तर्विष्ट अन्य उपबन्धों के और उन नियमों के जो उच्च न्यायालय इस निमित्त बनाए, अध्यधीन यह है कि इस अधिनियम के अधीन सब कार्यवाहियां जहां तक हो सकेगा सिविल प्रक्रिया संहिता, 1908 द्वारा विनियमित होंगी ।

[1][21क. **कुछ मामलों में अर्जियों को अन्तरित करने की शक्ति** – (1) जहां –

(क) इस अधिनियम के अधीन कोई अर्जी अधिकारिता रखने वाले जिला न्यायालय में विवाह के किसी पक्षकार द्वारा धारा 10 के अधीन न्यायिक पृथक्करण की डिक्री के लिए या धारा 13 के अधीन विवाह-विच्छेद की डिक्री के लिए प्रार्थना करते हुए पेश की गई है; और

(ख) उसके पश्चात् इस अधिनियम के अधीन कोई दूसरी अर्जी विवाह के दूसरे पक्षकार द्वारा किसी आधार पर धारा 10 के अधीन न्यायिक पृथक्करण की डिक्री के लिए या धारा 13 के अधीन विवाह-विच्छेद की डिक्री के लिए प्रार्थना करते हुए, चाहे उसी जिला न्यायालय में अथवा उसी राज्य के या किसी भिन्न राज्य के किसी भिन्न जिला न्यायालय में पेश की गई है,

वहां ऐसी अर्जियों के संबंध में उपधारा (2) में विनिर्दिष्ट रीति से कार्यवाही की जाएगी ।

(2) ऐसे मामले में जिसे उपधारा (1) लागू होती है, –

(क) यदि ऐसी अर्जियां एक ही जिला न्यायालय में पेश की जाती हैं तो दोनों अर्जियों का विचारण और उनकी सुनवाई उस जिला न्यायालय द्वारा एक साथ की जाएगी ;

(ख) यदि ऐसी अर्जियां भिन्न-भिन्न जिला न्यायालयों में पेश की जाती हैं तो बाद वाली पेश की गई अर्जी उस जिला न्यायालय को अन्तरित की जाएगी जिसमें पहले वाली अर्जी पेश की गई थी, और दोनों अर्जियों की सुनवाई और उनका निपटारा उस जिला न्यायालय द्वारा एक साथ किया जाएगा जिसमें पहली वाली अर्जी पेश की गई थी ।

---

[1] 1976 के अधिनियम सं. 68 की धारा 14 द्वारा अन्तःस्थापित ।

(3) ऐसे मामले में, जिसे उपधारा (2) का खंड (ख) लागू होता है, यथास्थिति, वह न्यायालय या सरकार, जो किसी वाद या कार्यवाही को उस जिला न्यायालय से, जिसमें बाद वाली अर्जी पेश की गई है, उच्च न्यायालय को जिसमें पहले वाली अर्जी लम्बित है, अन्तरित करने के लिए सिविल प्रक्रिया संहिता, 1908 (1908 का 5) के अधीन सक्षम है, ऐसी बाद वाली अर्जी का अन्तरण करने के लिए अपनी शक्तियों का वैसे ही प्रयोग करेगी मानो वह उक्त संहिता के अधीन ऐसा करने के लिए सशक्त की गई है ।

21ख. **इस अधिनियम के अधीन अर्जियों के विचारण और निपटारे से संबंधित विशेष उपबन्ध** – (1) इस अधिनियम के अधीन अर्जी का विचारण, जहां तक कि न्याय के हित से संगत रहते हुए उस विचारण के बारे में साध्य हो, दिन प्रतिदिन तब तक निरन्तर चालू रहेगा जब तक कि वह समाप्त न हो जाए किन्तु उस दशा में नहीं जिसमें न्यायालय विचारण का अगले दिन से परे के लिए स्थगन उन कारणों से आवश्यक समझे जो लेखबद्ध किए जाएंगे ।

(2) इस अधिनियम के अधीन हर अर्जी का विचारण जहां तक संभव हो शीघ्र किया जाएगा और प्रत्यर्थी पर अर्जी की सूचना की तामील होने की तारीख से छह मास के अन्दर विचारण समाप्त करने का प्रयास किया जाएगा ।

(3) इस अधिनियम के अधीन हर अपील की सुनवाई जहां तक संभव हो शीघ्र की जाएगी और प्रत्यर्थी पर अपील की सूचना की तामील होने की तारीख से तीन मास के अंदर सुनवाई समाप्त करने का प्रयास किया जाएगा ।

21ग. **दस्तावेजी साक्ष्य** – किसी अधिनियमिति में किसी प्रतिकूल बात के होते हुए भी यह है कि इस अधिनियम के अधीन अर्जी के विचारण को किसी कार्यवाही में कोई दस्तावेज साक्ष्य में इस आधार पर अग्राह्य नहीं होगी कि वह सम्यक् रूप से स्टाम्पित या रजिस्ट्रीकृत नहीं है ।]

[1][22. **कार्यवाहियों का बन्द कमरे में होना और उन्हें मुद्रित या प्रकाशित न किया जाना** – (1) इस अधिनियम के अधीन हर कार्यवाही बन्द कमरे में की जाएगी और किसी व्यक्ति के लिए ऐसी किसी कार्यवाही के सम्बन्ध में किसी बात को मुद्रित या प्रकाशित करना विधिपूर्ण नहीं होगा किन्तु उच्च न्यायालय या उच्चतम न्यायालय के उस निर्णय को छोड़कर जो उस न्यायालय की पूर्व अनुज्ञा से मुद्रित या प्रकाशित किया गया है ।

(2) यदि कोई व्यक्ति उपधारा (1) के उपबन्धों के उल्लंघन में कोई

---

[1] 1976 के अधिनियम सं. 68 की धारा 15 द्वारा धारा 22 के स्थान पर प्रतिस्थापित ।

बात मुद्रित या प्रकाशित करेगा तो वह जुर्माने से, जो एक हजार रुपए तक का हो सकेगा, दण्डनीय होगा ।]

23. **कार्यवाहियों में डिक्री** – (1) यदि इस अधिनियम के अधीन होने वाली किसी कार्यवाही में चाहे उसमें प्रतिरक्षा की गई हो या नहीं, न्यायालय का समाधान हो जाए कि –

(क) अनुतोष अनुदत्त करने के आधारों में से कोई न कोई आधार विद्यमान है और अर्जीदार [1][उन मामलों को छोड़कर, जिनमें उसके द्वारा धारा 5 के खण्ड (ii) के उपखण्ड (क), उपखण्ड (ख) या उपखण्ड (ग) में विनिर्दिष्ट आधार पर अनुतोष चाहा गया है] अनुतोष के प्रयोजन से अपने ही दोष या निर्योग्यता का किसी प्रकार फायदा नहीं उठा रहा या उठा रही है, और

(ख) जहां कि अर्जी का आधार [2]*** धारा 13 की उपधारा (1) के खण्ड (i) में विनिर्दिष्ट आधार हो वहां न तो अर्जीदार परिवादित कार्य या कार्यों का किसी प्रकार से उपसाधक रहा है और न उसने उनका मौनानुमोदन या उपमर्षण किया है अथवा जहां कि अर्जी का आधार क्रूरता हो वहां अर्जीदार ने उस क्रूरता का किसी प्रकार उपमर्षण नहीं किया है, और

[1][(खख) जब विवाह-विच्छेद पारस्परिक सम्मति के आधार पर चाहा गया है, और ऐसी सम्मति बल, कपट या असम्यक् असर द्वारा अभिप्राप्त नहीं की गई है, और]

(ग) [3][अर्जी (जो धारा 11 के अधीन पेश की गई अर्जी नहीं है)] प्रत्यर्थी के साथ दुस्सन्धि करके उपस्थापित या अभियोजित नहीं की जाती है, और

(घ) कार्यवाही संस्थित करने में कोई अनावश्यक या अनुचित विलम्ब नहीं हुआ है, और

(ङ) अनुतोष अनुदत्त न करने के लिए कोई अन्य वैध आधार नहीं है, तो ऐसी ही दशा में, किन्तु अन्यथा नहीं, न्यायालय तदनुसार ऐसा अनुतोष डिक्री कर देगा ।

---

[1] 1976 के अधिनियम सं. 68 की धारा 16 द्वारा अन्तःस्थापित ।

[2] 1976 के अधिनियम सं. 68 की धारा 16 द्वारा कतिपय शब्दों का लोप किया गया ।

[3] 1976 के अधिनियम सं. 68 की धारा 16 द्वारा "अर्जी" के स्थान पर प्रतिस्थापित ।

(2) इस अधिनियम के अधीन कोई अनुतोष अनुदत्त करने के लिए अग्रसर होने के पूर्व यह न्यायालय का प्रथमतः कर्तव्य होगा कि वह ऐसी हर दशा में, जहां कि मामले की प्रकृति और परिस्थितियों से संगत रहते हुए ऐसा करना सम्भव हो, पक्षकारों के बीच मेल-मिलाप कराने का पूर्ण प्रयास करे :

[1][परन्तु इस उपधारा की कोई बात किसी ऐसी कार्यवाही को लागू नहीं होगी जिसमें धारा 13 की उपधारा (1) के खण्ड (ii), खण्ड (iii), खण्ड (iv), खण्ड (v), खण्ड (vi) या खण्ड (vii) में विनिर्दिष्ट आधारों में से किसी आधार पर अनुतोष चाहा गया है ।]

[2][(3) ऐसा मेल-मिलाप कराने में न्यायालय की सहायता के प्रयोजन के लिए न्यायालय, यदि पक्षकार ऐसा चाहते तो या यदि न्यायालय ऐसा करना न्यायसंगत और उचित समझे तो, कार्यवाहियों को पंद्रह दिन से अनधिक की युक्तियुक्त कालावधि के लिए स्थगित कर सकेगा और उस मामले को पक्षकारों द्वारा इस निमित्त नामित किसी व्यक्ति को या यदि पक्षकार कोई व्यक्ति नामित करने में असफल रहते हैं तो न्यायालय द्वारा नामनिर्देशित किसी व्यक्ति को इन निदेशों के साथ निर्देशित कर सकेगा कि वह न्यायालय को इस बारे में रिपोर्ट दे कि मेल-मिलाप कराया जा सकता है या नहीं तथा करा दिया गया है या नहीं और न्यायालय कार्यवाही का निपटारा करने में ऐसी रिपोर्ट को सम्यक् रूप से ध्यान में रखेगा ।

(4) ऐसे हर मामले में, जिसमें विवाह का विघटन विवाह-विच्छेद द्वारा होता है, डिक्री पारित करने वाला न्यायालय हर पक्षकार को उसकी प्रति मुफ्त देगा ।]

[3][23क. **विवाह-विच्छेद और अन्य कार्यवाहियों में प्रत्यर्थी को अनुतोष** – विवाह-विच्छेद या न्यायिक पृथक्करण या दाम्पत्य अधिकारों के प्रत्यास्थापन के लिए किसी कार्यवाही में प्रत्यर्थी अर्जीदार के जारकर्म, क्रूरता या अभित्यजन के आधार पर चाहे गए अनुतोष का न केवल विरोध कर सकेगा बल्कि वह उस आधार पर इस अधिनियम के अधीन किसी अनुतोष के लिए प्रतिदावा भी कर सकेगा और यदि अर्जीदार का जारकर्म, क्रूरता या अभित्यजन साबित हो जाता है तो न्यायालय प्रत्यर्थी को इस अधिनियम के अधीन कोई ऐसा अनुतोष दे

---

[1] 1976 के अधिनियम सं. 68 की धारा 16 द्वारा जोडा गया ।

[2] 1976 के अधिनियम सं. 68 की धारा 16 द्वारा अंतःस्थापित ।

[3] 1976 के अधिनियम सं. 68 की धारा 17 द्वारा अंतःस्थापित ।

सकेगा जिसके लिए वह उस दशा में हकदार होता या होती जिसमें उसने उस आधार पर ऐसे अनुतोष की मांग करते हुए अर्जी उपस्थापित की होती ।]

24. **वाद लम्बित रहते भरण-पोषण और कार्यवाहियों के व्यय** – जहां कि इस अधिनियम के अधीन होने वाली किसी कार्यवाही में न्यायालय को यह प्रतीत हो कि, यथास्थिति, पति या पत्नी की ऐसी कोई स्वतंत्र आय नहीं है जो उसके संभाल और कार्यवाही के आवश्यक व्ययों के लिए पर्याप्त हो वहां वह पति या पत्नी के आवेदन पर प्रत्यर्थी को यह आदेश दे सकेगा कि अर्जीदार को कार्यवाही में होने वाले व्यय तथा कार्यवाही के दौरान में प्रतिमास ऐसी राशि संदत्त करे जो अर्जीदार की अपनी आय तथा प्रत्यर्थी की आय को देखते हुए न्यायालय को युक्तियुक्त प्रतीत होती हो :

[1][परन्तु कार्यवाही के व्ययों और कार्यवाही के दौरान ऐसी मासिक राशि के संदाय के लिए आवेदन को यथासंभव, यथास्थिति, पत्नी या पति पर सूचना की तामील की तारीख से, साठ दिन के भीतर निपटाया जाएगा ।]

25. **स्थायी निर्वाहिका और भरण-पोषण** – (1) इस अधिनियम के अधीन अधिकारिता का प्रयोग कर रहा कोई भी न्यायालय, डिक्री पारित करने के समय या उसके पश्चात् किसी भी समय, यथास्थिति, पति या पत्नी द्वारा इस प्रयोजन से किए गए आवेदन पर, यह आदेश दे सकेगा कि प्रत्यर्थी [2]*** उसके भरण-पोषण और संभाल के लिए ऐसी कुल राशि या ऐसी मासिक अथवा कालिक राशि, जो प्रत्यर्थी की अपनी आय और अन्य सम्पत्ति को, यदि कोई हो आवेदक या आवेदिका की आय और अन्य सम्पत्ति को [3][तथा पक्षकारों के आचरण और मामले की अन्य परिस्थितियों को देखते हुए] न्यायालय को न्यायसंगत प्रतीत हो, आवेदक या आवेदिका के जीवन-काल से अनधिक अवधि के लिए संदत्त करे और ऐसा कोई भी संदाय यदि यह करना आवश्यक हो तो, प्रत्यर्थी की स्थावर सम्पत्ति पर भार द्वारा प्रतिभूत किया जा सकेगा ।

(2) यदि न्यायालय का समाधान हो जाए कि उसके उपधारा (1) के अधीन आदेश करने के पश्चात् पक्षकारों में से किसी की भी परिस्थितियों में तब्दीली हो गई है तो वह किसी भी पक्षकार की प्रेरणा पर ऐसी रीति से, जो

---

[1] 2001 के अधिनियम सं. 49 की धारा 8 द्वारा (24.9.2001 से) अन्तःस्थापित ।

[2] 1976 के अधिनियम सं. 68 की धारा 18 द्वारा "जब तक आवेदक या आवेदिका अविवाहित रहे तब तक" शब्दों का लोप किया गया ।

[3] 1976 के अधिनियम सं. 68 की धारा 18 द्वारा कतिपय शब्दों के स्थान पर प्रतिस्थापित ।

न्यायालय को न्यायसंगत प्रतीत हो ऐसे किसी आदेश में फेरफार कर सकेगा या उसे उपान्तरित अथवा विखण्डित कर सकेगा ।

(3) यदि न्यायालय का समाधान हो जाए कि उस पक्षकार ने जिसके पक्ष में इस धारा के अधीन कोई आदेश किया गया है, पुनर्विवाह कर लिया है या यदि ऐसा पक्षकार पत्नी है तो वह पतिव्रता नहीं रह गई है, या यदि ऐसा पक्षकार पति है तो उसने किसी स्त्री के साथ विवाहबाह्य मैथुन किया है, [1][तो वह दूसरे पक्षकार की प्रेरणा पर ऐसे किसी आदेश को ऐसी रीति में, जो न्यायालय न्यायसंगत समझे, परिवर्तित, उपांतरित या विखंडित कर सकेगा ।]

26. **अपत्यों की अभिरक्षा** – इस अधिनियम के अधीन होने वाली किसी भी कार्यवाही में न्यायालय अप्राप्तवय अपत्यों की अभिरक्षा, भरण-पोषण और शिक्षा के बारे में, यथासंभव उनकी इच्छा के अनुकूल, समय-समय पर ऐसे आदेश पारित कर सकेगा और डिक्री में ऐसे उपबन्ध कर सकेगा जिन्हें वह न्यायसंगत और उचित समझे और डिक्री के पश्चात् इस प्रयोजन से अर्जी द्वारा किए गए आवेदन पर ऐसे अपत्य की अभिरक्षा, भरण-पोषण और शिक्षा के बारे में समय-समय पर ऐसे आदेश और उपबन्ध कर सकेगा जो ऐसी डिक्री अभिप्राप्त करने की कार्यवाही के लम्बित रहते ऐसी डिक्री या अन्तरिम आदेश द्वारा किए जा सकते थे और न्यायालय पूर्वतन किए गए ऐसे किसी आदेश या उपबंध को समय-समय पर प्रतिसंहृत या निलंबित कर सकेगा अथवा उसमें फेरफार कर सकेगा :

[2][परंतु ऐसी डिक्री अभिप्राप्त करने के लिए कार्यवाही लंबित रहने तक अप्राप्तवय अपत्यों के भरण-पोषण और शिक्षा की बाबत आवेदन को यथासंभव, प्रत्यर्थी पर सूचना की तामील की तारीख से, साठ दिन के भीतर निपटाया जाएगा ।]

27. **सम्पत्ति का व्ययन** – इस अधिनियम के अधीन होने वाली किसी भी कार्यवाही में, न्यायालय ऐसी सम्पत्ति के बारे में, जो विवाह के अवसर पर या उनके आस-पास उपहार में दी गई हो और संयुक्ततः पति और पत्नी दोनों की हो, डिक्री में ऐसे उपबन्धित कर सकेगा जिन्हें वह न्यायसंगत और उचित समझे ।

---

[1] 1976 के अधिनियम सं. 68 की धारा 18 द्वारा कतिपय शब्दों के स्थान पर प्रतिस्थापित ।

[2] 2001 के अधिनियम सं. 49 की धारा 9 द्वारा (24.9.2001 से) अंतःस्थापित ।

[1][28. **डिक्रियों और आदेशों की अपीलें** – (1) इस अधिनियम के अधीन किसी कार्यवाही में न्यायालय द्वारा दी गई सभी डिक्रियां, उपधारा (3) के उपबन्धों के अधीन रहते हुए उसी प्रकार अपीलनीय होंगी जैसे उस न्यायालय द्वारा अपनी आरम्भिक सिविल अधिकारिता के प्रयोग में दी गई डिक्री अपीलीय होती है और ऐसी हर अपील उस न्यायालय में होगी जिसमें उस न्यायालय द्वारा अपनी आरम्भिक सिविल अधिकारिता के प्रयोग में किए गए विनिश्चयों की अपीलें सामान्यतः होती हैं ।

(2) धारा 25 या धारा 26 के अधीन किसी कार्यवाही में न्यायालय द्वारा किए गए आदेश उपधारा (3) के उपबन्धों के अधीन रहते हुए, तभी अपीलनीय होंगे जब वे अन्तरिम आदेश न हों और ऐसी हर अपील उस न्यायालय में होगी जिसमें उस न्यायालय द्वारा अपनी आरम्भिक सिविल अधिकारिता के प्रयोग में किए गए विनिश्चयों की अपीलें सामान्यतः होती हैं ।

(3) केवल खर्चे के विषय में कोई अपील इस धारा के अधीन नहीं होगी ।

(4) इस धारा के अधीन हर अपील डिक्री या आदेश की तारीख से [2][नब्बे दिन की कालावधि] के अन्दर की जाएगी ।

28क. **डिक्रियों और आदेशों का प्रवर्तन** – इस अधिनियम के अधीन किसी कार्यवाही में न्यायालय द्वारा दी गई सभी डिक्रियों और आदेशों का प्रवर्तन उसी प्रकार किया जाएगा जिस प्रकार उस न्यायालय द्वारा अपनी आरम्भिक सिविल अधिकारिता के प्रयोग में दी गई डिक्रियों और आदेशों का तत्समय प्रवर्तन किया जाता है ।]

व्यावृत्तियां और निरसन

29. **व्यावृत्तियां** – (1) इस अधिनियम के प्रारंभ के पूर्व हिन्दुओं के बीच, अनुष्ठापित ऐसा विवाह, जो अन्यथा विधिमान्य हो, केवल इस तथ्य के कारण अविधिमान्य या कभी अविधिमान्य रहा हुआ न समझा जाएगा कि उसके पक्षकार एक ही गोत्र या प्रवर के थे अथवा, विभिन्न धर्मों, जातियों या एक ही जाति की विभिन्न उपजातियों के थे ।

(2) इस अधिनियम में अंतर्विष्ट कोई भी बात रूढ़ि से मान्यताप्राप्त या किसी विशेष अधिनियमिति द्वारा प्रदत्त किसी ऐसे अधिकार पर प्रभाव डालने

---

[1] 1976 के अधिनियम सं. 68 की धारा 19 द्वारा प्रतिस्थापित ।

[2] 2003 के अधिनियम सं. 50 की धारा 5 द्वारा (26.12.2003 से) ''तीस दिन की कालावधि'' के स्थान पर प्रतिस्थापित ।

वाली न समझी जाएगी जो किसी हिन्दू विवाह का वह इस अधिनियम के प्रारंभ के चाहे पूर्व अनुष्ठापित हुआ हो चाहे पश्चात्, विघटन अभिप्राप्त करने का अधिकार हो ।

(3) इस अधिनियम में अंतर्विष्ट कोई भी बात तत्समय प्रवृत्त किसी विधि के अधीन होने वाली किसी ऐसी कार्यवाही पर प्रभाव न डालेगी जो किसी विवाह को बातिल और शून्य घोषित करने के लिए या किसी विवाह को बातिल अथवा विघटित करने के लिए या न्यायिक पृथक्करण के लिए हो और इस अधिनियम के प्रारंभ पर लम्बित हो और ऐसी कोई भी कार्यवाही चलती रहेगी और अवधारित की जाएगी मानो यह अधिनियम पारित ही न हुआ हो ।

(4) इस अधिनियम में अंतर्विष्ट कोई भी बात विशेष विवाह अधिनियम, 1954 (1954 का 43) में अन्तर्विष्ट किसी ऐसे उपबन्ध पर प्रभाव न डालेगी जो हिन्दुओं के बीच उस अधिनियम के अधीन, इस अधिनियम के प्रारंभ के चाहे पूर्व चाहे पश्चात् अनुष्ठापित विवाहों के संबंध में हो ।

30. **[निरसन ।]** – रिपीलिंग एण्ड अमेंडिंग ऐक्ट, 1960 (1960 का 58) की धारा 2 और प्रथम अनुसूची द्वारा निरसित ।